* श्रीमते रामानुजाय नमः *

जनवरी १९९१ सम्वत् २०४७

अनन्त सन्देश

भगवान श्रीलक्ष्मीनारायण

मासिक-प्रकाशन

श्रीवेङ्कटेश देवस्थान ८०/८४ फणसवाड़ी, बम्बई—२

* विषयानुक्रमणिका *

पण्डित श्रीरामानुजाचार्यजी का अभिनन्दन

२४, दिसम्बर १९९० श्रौतमुनि निवास वृन्दावन में वेदों के महान् विद्वान् एवं प्रकाशक महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराजकी दशोत्तरशत (११०) जयन्ती पर समायोजित अभिनन्दन समारोह में भागवततत्वमर्मज्ञ, परम प्रपन्न, सदाचार सच्चरित्रविशिष्ट पण्डित श्रीरामानुजाचार्य जी महाराज का भव्य अभिनन्दन सम्पन्न हुआ। यह कार्य आश्रम की गरिमा के अनुरूप ही था। इस पावन कार्य में श्रीजीवन्मुक्तोदासीन पुजारीजी की विशेष अग्रणी भूमिका रही।

—सम्पादक

वार्षिक भेंट भारत में २०) आजीवन २०१)	कर्म हमारा जीवन है। धर्म हमारा प्राण है॥	साधारण प्रति भारत में २)रु०

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अनन्त सन्देश

मासिक प्रकाशन

अनन्ताचार्यवर्याणामनन्ताऽद्भुतभावदः जीयादनन्तसन्देशः सदनन्तप्रभावतः ॥

ईशानां जगतोऽस्य वेङ्कटपतेर्विष्णोः परां प्रेयसीं, तद्वक्षःस्थलनित्यवासरसिकां तत्क्षान्तिसम्वर्धिनीम् ।
पद्मालंकृतपाणिपल्लवयुगां पद्मासनस्थां श्रियं, वात्सल्यादिगुणोज्ज्वलां भगवतीं वन्दे जगन्मातरम् ॥

वर्ष १९, सम्वत् २०४७ माघ } श्रीधाम वृन्दावन { जनवरी १९९१, अङ्क—८

* विजयते रङ्गनाथः *

रङ्गक्षेत्राधिनाथं हृदि न दधति ये तांस्तृणायैव मन्ये,
ये तं ध्यायन्ति नित्यं त इह मम परं दैवतं, ते ममेशाः ।
तेऽमी मच्छेषिणः स्युः सकलविधिपरीचारयोग्याश्च ते मे,
धन्यः स्यां तत्सपर्याविधिभिरिति मया प्रार्थ्यते रंगनाथः ॥

धिक्तान् ये खलु रंगनाथ भगवत्पादारविन्दद्वये,
भक्ति नैव वहन्ति तमसा गाढेन संछादिताः ।
ये तं पद्मनिभेक्षणं वरवरं रंगाधिपं माधवं,
सेवन्ते सकृदप्यहो वयमिमान्धन्यान् हि मन्यामहे ॥

★

सम्पादकीय

जागो और आगे बढ़ो यही समृद्धि है ।

★

'अनन्त-सन्देश' धार्मिक पत्र में धर्म की चर्चा ही आवश्यक है। लेकिन उन सरस भावुक बातों से पुराण साहित्य तथा अन्य ग्रन्थ भरे पड़े हैं। मानव जीवन में उन सरस भावप्रद बातों को सँजोकर रखने के लिए कुछ कठोर शब्द में से ठ' की तरह कठिनता अपनानी होगी। नारिकेल के अन्दर सारभाग और उपयोगी पेय की सुरक्षा ऊपर का कठिन आवरण के सदृश ही समझना चाहिये। इसी कठोरता को मानव जीवन का तप कहा जा सकता है। तप स्वयं कठोर होता है किन्तु उसी परिश्रम के आचरण से मानव जीवन में उत्तमोत्तम संस्कार बनते हैं, जिससे वह जीवन बहुमूल्यवान्, विशिष्ट बनता है, और वह व्यक्ति इतना शक्तिशाली हो जाता है कि उसमें सृष्टि रचने की क्षमता पैदा हो जाती है।

भारतीय पद्धति में कठोर तप सदाचार पूर्वक करने से व्यक्ति में सात्विक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। उसी कायः क्लेश को असद् आचरण पूर्वक किया जाय तो आसुरी, तामसी शक्ति पैदा होती है, जिससे समष्टि में शान्ति-सुख की सृष्टि न होकर चतुर्दिक् हाहाकार विनाश ही दीख पड़ता है। इसे उदाहरण से इस प्रकार समझा जा सकता है कि प्रातः स्मरणीय अनन्तश्रीविभूषित श्रीरंगदेशिक स्वामीजी महाराज ने कठोर तप के साथ अष्टाक्षर महामन्त्र का पुरश्चरण हिमालय के श्रीबदरीधाम क्षेत्र के पावन परिसर में किया और उसके बाद गिरिराज गोवर्धन की उपत्यका में उसी पुरश्चरणरूपी सात्विक तप के आचरण से उत्पन्न सात्विक शक्ति के बल से श्रीगोदाम्बाजी के मनोरथपूर्ति के लिए श्रीरङ्गमन्दिर जैसा विशाल दिव्यदेश का निर्माण सम्पन्न हुआ। जो आज देखने वालों के लिए आश्चर्य का विषय है। भोजन, निद्रा, भय, संभोग सभी योनियों में समान रूप से सुखप्रद हैं, चाहे पशुयोनि हो अथवा मनुष्ययोनि। हां मनुष्ययोनि में धर्म की विशेषता ही उसे पशुता की परिधि से हटाकर मनुष्यता की उत्तम श्रेणी में लाकर सुशोभित करती है। इस कथन को सभी जानते हैं—'आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणाम्। धर्मोहि तेषामधिको विशेषः, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥ धर्मरहित व्यक्ति पशु के समान है।

उस धर्म की शिक्षा कहाँ से प्राप्त हो ? इस विषय का समाधान शिष्ट परम्परा से प्राप्त है कि इस प्रकार की शिक्षा सर्वप्रथम माता से प्राप्त होती है, गुरुजनों से अर्थात् पिता और आचार्य से बाद में प्राप्त होती है। बच्चे को प्रातःकाल ४ बजे निद्रा त्यागकर शारीरिक शुद्धि स्नान आदि से निर्मल होकर स्वच्छ पवित्र वस्त्र धारण कर आकाश में तारों के रहते सन्ध्या करने के लिए पवित्र आसन पर बैठकर उपासना में तत्पर हो जाना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिये सन्ध्या परम आवश्यक है। बिना सन्ध्या किये व्यक्ति सत्कर्म करने का अधिकारी ही नहीं होता है। उसी के साथ गायत्री का जप, अष्टाक्षर महामन्त्र का जप करना भी आवश्यक है। यह सब तप ही तो है जिससे मनुष्य में सत्संस्कार बनने हैं और धीरे धीरे वह व्यक्ति ज्ञान का सत्पात्र बन जाता है।

अब पिता व गुरुजन उस व्यक्ति को प्रथम सामान्य धर्म जो सार्वभौम भी हैं—

'धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।'

ये दस धर्म हैं। मानवता के आधार स्तम्भ हैं। इनका पालन करना या आचरण करने वाला व्यक्ति ही सामाजिक श्रेष्ठ पुरुष माना जाता है।

धैर्य वृत्ति से ज्ञानार्जन में एवं अन्य कार्यों में सफलता मिलती है। सीढ़ी से चढ़ने या उतरते समय धैर्य से कार्य नहीं लेंगे तो लड़खड़ा कर गिर पड़ेंगे। प्राप्तव्य भी नहीं मिलेगा। क्षमा-सहन शीलता शर्दी-गर्मी के थपेड़े लगने पर भी अपने अनुष्ठान से विरत न होना। दम-मन को वश में रखना, उसके लिए अभ्यास और विषयों के प्रति वैराग्य मन को वश में करने के साधन हैं।

अस्तेय-चोरी न करना, यह आवश्यक है भाव-शुद्धि के लिए। धन, जन, भावों, कृति आदि की चोरी से मनुष्य स्वभाव बिगड़ता है। इन्द्रिय-निग्रह-पांच ज्ञानेन्द्रिय- चक्षु, कर्ण, घ्राण, रसना, त्वचा, और पाँच कर्मेन्द्रिय–हाथ, पैर, वाक्, पायु, उपस्थ इनको अपने वश में रखने वाला उत्तम श्रेष्ठ व्यक्ति रूप से प्रतिष्ठित होता है। ये ही करण कहलाती हैं। कलेवर=शरीर को वश में रखो। चलते, उठते, बैठते समय हमारे शरीर से अन्य व्यक्ति कोई भी परेशानी न हो। इन धर्मों के पालन करने से व्यक्ति धी-बुद्धिमान, विद्या-विद्वान्, सत्यपरायण हो जाता है और वही काम, क्रोध, लोभ पर काबू कर पाता है। सर्वथा नहीं तो आंशिक ही सही, कर लेता है कहा है—

'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।

काम, क्रोध, लोभ ये तीन दरवाजे हैं नरक के, इनसे बचो। इन दश सामान्य धर्मों के कठोरता से पालन करने पर ही व्यक्ति में मानवता रूपी उदात्त सरसता टिकती है जिससे व्यक्ति यशस्वी होता है। वही उसे चिरंजीवी अमर्त्य बना देता है।

पहले इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्रत्येक सार्वजनिक स्थान मन्दिर, पाठशाला, गुरुद्वारा में हुआ करती थी। उसे सुनने के लिए प्रत्येक घर की वृद्धा माता नियमित रूप से सुनने जाती और घर आकर अपने बच्चों वधुओं को बताती सुनातीं जिससे उनमें शुभ संस्कार बनें या जागरूक हों। आज इसप्रकार की व्यवस्थासमाप्त होगयी। मंदिरों में व्यासों पुरोहितों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा, पाठशालाओं में गुरुजनों द्वारा 'सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान् मा प्रमदः, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।' आदि की शिक्षा न देकर सीधे पुस्तकी शिक्षा देकर इतिकर्तव्यता मान ली जाती है। धार्मिक पाठ पुस्तकों से निकाल दिये गये। परिणाम यह हुआ है कि आज की सन्तान सदाचार-व्यवहार में शून्य होती जा रही है। वृद्धाओं, माताओं में धर्म-सदाचार का ज्ञान नहीं रहा, फिर वे अपनी सन्तान को धर्म के बारे में क्या बतावें। इस प्रकार घर घर धार्मिक शिक्षा का अभाव होने से गाँव-गाँव उस प्रकार के बनते जा रहे हैं। सरकार का मनोरथ सिद्ध हो रहा है क्योंकि उन्होंने तो धर्मनिरपेक्ष समाज निर्माण की प्रतिज्ञा जो कर रखी है। उसी प्रकार का साहित्य दृश्य, श्रव्य रूप में प्रस्तुत भी कर रही है। उसका असर आबाल वृद्ध, नारी समाज तक पर पड़ा है। बालक उद्दण्ड और नारियां शील रहित होती जा रही हैं। आगे सांकर्य की स्थिति बनने से 'लुप्तपिण्डोदकक्रिया' पिण्डोदक कार्य लुप्त होते जा रहे है जिससे जातिधर्म, कुलधर्म नष्ट होते जा रहे हैं। समाज उच्छृखल होता जा रहा है।

हिन्दू समाज पतनोन्मुख है। पतन ऊपर से नीचे की ओर होता है। हम कभी ऊँचे थे, अब पतन की ओर हैं। यह धार्मिक पतन भारत स्वतन्त्र होने के बाद बड़ी तेजी से हुआ है। हम अन्ताराष्ट्रीय भूमिका की मृगमरीचिका से आकर्षित हुये। अपने देश, धर्म, संस्कृति, सभ्यता को भूल बैठे। अन्य देशों की संस्कृति सभ्यता के प्रति

आकर्षित हुये। हमारे पूर्वज संकटकाल में भी भारत छोड़कर विदेश यात्रा का विरोध करते थे, क्यों? वे उसके परिणामों से परिचित थे। आज उसे उपहास समझा जाता है। कारण है स्वार्थ, पैसे की हवस ने हमें उन अपनी बातों के प्रति उदासीन कर दिया। कुर्सी के लालच ने तुष्टीकरण को गले लगाकर हिन्दू को हिन्दू का दुश्मन बना दिया। आज धर्म का अंकुश न रहा अतः समाज उन्मत्त हाथी की तरह दिग्भ्रमित हो गया है। मात्र आर्थिक स्वार्थ की संकुचित परिधि में घूमता हुआ निरा भौतिकवादी हो गया है। अपनी जुम्मेदारी भूल से गये हैं। जिन्हें बगिया के संरक्षण निरीक्षण के लिए नियुक्त किया था वे बुरी तरह नोंच खसोट कर उसे नष्ट किये दे रहे हैं। मालिक के दाम्भिक मुखौटे को पहन-निरंकुश भाव से अपने स्वार्थ में उसे उजाड़े दे रहे हैं। जो जिसके लिए रखे गये थे वे उसे भूल गये और आराम से नश्वर भागों तक सीमित हैं। नाचीज की तरह दिन बिता रहे हैं।

हिन्दुओं! जागो। बहुत दिन गुलामी की ठोकरें खाकर तुम्हारे रक्त में गुलामी भर गयी है। यदि यही हालात रही तो तुम मिट जाओगे। तुम्हारे अस्तित्व खतरे में पड़ जायगा। तुम अपने अन्दर ताकत पैदा करो। बलवान् बनो। बलवान् को ही क्षमा, सहिष्णुता शोभा देती है। निर्बल किसी को क्या क्षमा करेगा। आज सर्वत्र अस्मिता का संघर्ष है। उसकी उपेक्षा तुम भी नहीं कर सकते हो। जागो! बलवान् बनो! तभी तुम बच सकोगे। गुमराह करने वालों से सजग रहो। सनातन धर्म ही तुम्हारा धर्म है वही तुम्हारी रक्षा भी कर सकता है अतः उसी धर्म को बचाओ, वही तुम्हें बचायेगा। 'धर्मो रक्षति रक्षतः'

—सम्पादक

व्रतोत्सव फाल्गुन-चैत्रमास

दिनांक	वार	व्रतोत्सव
१०-२-९१	रविवार	एकादशी व्रत
१३-२-९१	बुधवार	कुम्भ संक्रान्ति
१४-२-९१	गुरुवार	अमावास्या
२२-२-९१	शुक्रवार	होलिकाष्टक प्रारम्भ
२५-२-९१	सोमवार	एकादशीव्रत
२८-२-९१	गुरुवार	पूर्णिमा होलिका दहन सायंकाल
१-३-९१	शुक्रवार	धूलिकोत्सव
३-३-९१	रविवार	श्रीरङ्गमन्दिर वृन्दावन में श्रीब्रह्मोत्सव प्रारम्भ मृत्संग्रहण
४-३-९१	सोमवार	श्रीगरुड़ प्रतिष्ठा, रक्षाबन्धन
५-३-९१	मंगलवार	श्रीब्रह्मोत्सव प्रारम्भ प्रातः सायं सवारियों के दर्शन
११-३-९१	सोमवार	रथोत्सव श्रीरङ्गमन्दिर वन्दावन
१२-३-९१	मंगलवार	एकादशी व्रत
१६-३-९१	शनिवार	अमावास्या

नोट—ब्रज की प्रसिद्ध होली महोत्सव २३-२-९१ शनिवार नवमी को बरसाने में २४-२-९१ रविवार दशमी को नन्दगाँव में और २५-२-९१ सोमवार एकादशी से वन्दावन में मनाया जायगी।

गतांक से आगे–

सिद्धाश्रम [बक्सर] माहात्म्यम्

अनन्तश्री विभूषित श्रीमज्जगद्गुरु श्रीविष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्डि स्वामीजी महाराज, बिहार

❖

।। अथ रामेश्वरवर्णनम् ।।

ब्रह्महत्यासहस्राणि सुरापानायुतानि च ।
दृष्टे रामेश्वरे देवे विलयं यान्ति कृत्स्नशः । ये वाञ्छन्ति सदाभोगं राज्यं च त्रिदशालये ।।
रामेश्वरमहालिङ्गं ते नमन्तु सकृन्मुदा । यानि कानि च पापानि जन्मकोटिकृतान्यपि ।।
तानि रामेश्वरे दृष्टे विलयं यान्ति सर्वदा । सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयाद्वापि च संस्मरन् ।।
रामेश्वरमहालिङ्गं नेहामुत्र च दुःखभाक् । रामेश्वरमहालिङ्गं कीर्तयन्नर्चयन्नपि ।।
अवश्यं रुद्रसारूप्यं लभते नात्र संशयः । यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् ।।
तथा पापानि सर्वाणि रामेश्वरविलोकनात् ।।

(स्का० ३—१—४३—१९—२५)

हजार ब्रह्महत्या और दसहजार सुरापान । रामेश्वर देव के देखने पर अच्छी प्रकार से नाश हो जाते हैं । जो लोग देवलोक में सर्वदा भोग को या राज्य को चाहते हैं । वे लोग एक बार भी भक्ति से श्रेष्ठ रामेश्वर लिंग को नमस्कार करें । जो कुछ पाप कड़ोर जन्म से किये गये हैं । वे सब पाप रामेश्वर के देखने पर सर्वदा के लिए नष्ट हो जाते हैं । संपर्क से या कौतुक से अथवा लोभ से या भय से भी स्मरण करता हुआ । रामेश्वर श्रेष्ठलिंग को इस लोक में या परलोक में दुःख भागी नहीं होता है । रामेश्वर श्रेष्ठलिंग को कीर्तन करता हुआ या पूजा करता हुआ । अवश्य रुद्रसारूप्य को प्राप्त करता है इसमें संशय नहीं है । जैसे दहका हुआ अग्नि इन्धन को क्षण मात्र में भस्म कर देता है । तैसे ही मनुष्य रामेश्वर के दर्शन से सब पापों को भस्म कर देता है ।

सर्वेषां चैव वर्णानामखिलाश्रमिणामपि । रामेश्वरमहालिंगदर्शनादेव केवलात् ।।
अपुनर्भवदा मुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बिता ।।

(स्कां० ३-१-४३-३२—३३)

केवल श्रेष्ठ रामेश्वरलिंग के दर्शन से ही सब वर्णों के और सब आश्रमियों के भी । अपुनर्भवदा मुक्ति शीघ्र प्राप्त होती है ।

रामेश्वरमहालिङ्गं यः पश्यति सभक्तिकम् ।
न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले । रामेश्वरमहालिङ्गे भक्तो यः श्वपचोऽपि सन् ।।
तस्मै दानानि देयानि नान्यस्मै च त्रयीविदे । या गतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।।
सा गतिः सर्वजन्तूनां रामेश्वरविलोकिनाम् ।

(स्कां० ३-१—४३—३६-३९)

जो भक्ति सहित श्रेष्ठ रामेश्वरलिंग को देखता है। उसकी तुल्यता को भूतल पर चतुर्वेदी विप्र भी नहीं कर सकता है। श्वपच होता हुआ भी जो रामेश्वरलिंग का भक्त है। उसके लिए रामेश्वरांश दान देना चाहिये और अन्य त्रयीवेत्ता के लिये नहीं देना चाहिये। योग से युक्त ऊर्ध्वरेता मुनियों की जो गति होती है। वह गति बक्सर में रामेश्वर के देखने से सब प्राणियों की होती है।

रामेश्वरमहालिंगं यः पूजयति भक्तितः। भुक्तिमुक्त्योश्च राज्यानामसौ परमभाजनम्॥

(स्कां० ३-१-४३-५०)

जो भक्ति से श्रेष्ठ रामेश्वर लिंग को पूजता है वह नर भुक्ति और मुक्ति तथा राज्य का परम भाजन होता है।

सायंकाले महास्तोत्रैः स्तौति रामेश्वरं तु यः। स्वर्णस्तेयसहस्राणि तस्य नश्यन्ति तत्क्षणम्॥

(स्कां० ३-१-४३-६३)

जो मनुष्य सायंकाल में बड़ा स्तोत्रों से रामेश्वर की स्तुति करता है उसका सोना चोराने का हजारों पाप उसी क्षण से नष्ट हो जाते हैं।

नीलकण्ठ महादेव रामेश्वर सदाशिव। इति ब्रुवन्सदा जन्तुर्नैव कामेन बाध्यते॥
रामेश्वर यमाराते कालकूटविषादन। इतीरयञ्जनो नित्यं न क्रोधेन प्रपीड्यते॥

(स्कां० ३-१-४३-७३-७४)

हे नीलकण्ठ, हे महादेव, हे रामेश्वर, हे सदाशिव ऐसा सर्वदा उच्चारण करता हुआ जीव काम से नहीं बाधित होता है। हे रामेश्वर हे यमाराते, हे कालकूटविषादन, ऐसा नित्य उच्चारण करता हुआ भक्तजन क्रोध से नहीं पीड़ित होता है।

अभ्यङ्गं तिलतैलेन रामेश्वरशिवस्य यः। करोति हि सकृद्भक्त्या स कुबेरगृहे वसेत्।

(स्कां० ३-१-४३-९०)

जो मनुष्य एक बार भी भक्ति से रामेश्वर शिव का तिल के तेल करके अभ्यङ्ग करता है वह निश्चय कुबेर के घर में वास करता है।

पुष्पवासिततोयेन हेमसंपृक्तवारिणा। पद्मवासिततोयेन स्नानाद्रामेश्वरस्य तु॥
महेन्द्रासनमारुह्य तेनैव सह मोदते। पाटलोत्पलकल्हारपुन्नागकरवीरकैः॥
वासितैर्वारिभिर्विप्रा रामेश्वरमहेश्वरम्। अभिषिच्य महद्भिश्च पातकैः स विमुच्यते॥

(स्कां० ३-१-४३-९७-९९)

पुष्प से वासित जल से या सोना के कलश में स्थित जल से अथवा कमल से वासित जल से रामेश्वर के स्नान कराने से। महेन्द्रासन पर चढ़कर इन्द्र के साथ ही आनन्द करता है। और गुलाब कमल कल्हार पुन्नाग तथा तथा करबीरक आदि से। वासित जल से रामेश्वर शिव का अभिषेक करके हे विप्र सब महान् पातकों से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

❖

—क्रमशः

आचार्य श्रीराममिश्र (मणक्काल नम्बि)

अनुज्झितक्षमायोगं—अपुण्यजनबाधकम् ।
अस्पृष्टमदरागं तं रामं तुर्यमुपास्महे ।।

(यतिराजसप्ततिः)

हम श्रीराममिश्र आचार्य को भजते हैं जिन्होंने कभी क्षमाका त्याग नहीं किया, जो पुण्यजनों को कभी दुःख देने वाले न थे और जिन्हें मद या राग का स्पर्श तक नहीं था, अतः ये पुराणप्रसिद्ध तीन रामों (परशुराम, सीताराम, बलराम) से श्रेष्ठ चौथे राम हैं।

श्रीराममिश्रजी ने क्षमा (शान्ति) का त्याग नहीं किया, परशुराम ने क्षमा-शान्ति का त्याग किया, अथवा परशुरामजी ने सम्पूर्ण क्षमा-पृथिवी को दक्षिणा में देकर त्याग किया था। ये राममिश्र पुण्यजनों (साधुओं) के बाधक नहीं थे। दाशरथि राम अपुण्यजनों (राक्षसों) के बाधक थे। श्रीराम-मिश्र को मद या राग का स्पर्श नहीं था, बलराम मदिरा पीते थे जिससे उनका मुख राग युक्त रहता था, लाल रहता था। अतः इन तीनों रामों से ये विलक्षण थे।

श्रीपुण्डरीक्ष के कई प्रधान शिष्यों में एक श्रीराममिश्र भी थे। इनका जन्म श्रीरङ्गम् से दस मील पर 'मणक्काल' में हुआ था, इसीलिये इन्हें 'मणक्कालनम्बि' कहा जाता है। इनकी सूक्ष्म बुद्धि, शान्त स्वभाव आदि को देख पुण्डरीकाक्ष इन्हें बड़े प्रेम से पढ़ाते थे। मद या काम का स्पर्श भी इनमें न था। ये भक्तों के अक्रीतदास थे। इन्होंने बारह वर्ष तक आचार्य सन्निधि में रहकर अध्यात्मग्रंथों का विधिवत् अध्ययन किया।

श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामी की धर्मपत्नीका वैकुण्ठवास हो जाने पर श्रीराममिश्र ही अपने आचार्य की गृहस्थी का भी सब कार्य करते थे। एक मेला आया उसमें गाँव की सब लड़कियाँ तरह तरह के पक्वान्न लेकर नदी पर जातीं और स्नान कर खा पीकर लौटतीं। श्रीपुण्डरीकाक्ष ने अपनी दो पुत्रियों को श्रीराममिश्र के साथ भेज दिया। नदी से लौटते समत अन्य मार्ग से आयीं, मार्ग में एक छोटा नाला कीचड़ से भरा था। लड़कियां उसे पार न कर सकीं। राममिश्र पीछे से आते थे। यह स्थिति देख कर राममिश्र उस नाले में लेट गये और लड़कियों से पीठ पर पैर रख नाला पार करने का बार बार आग्रह किया। लड़कियों ने नाला पार किया और घर जाकर अपने पिताजी से सारी घटना बतायी। राममिश्र नदी स्नान कर लौटे तो श्रीपुण्डरीकाक्ष ने श्रीराममिश्र की आचार्य भक्ति की प्रशंसा करते हुये सन्तोष प्रकट किया और उन पर बड़ा अनुग्रह किया।

श्रीपुण्डरीकाक्ष अति वृद्ध हो गये थे। श्रीराममिश्र को बुलाकर उन्होंने कहा—प्रिय पुत्र ! मुझे यह सौभाग्य न मिला कि मैं अपने आचार्य श्रीनाथमुनि के पौत्र यामुन को कुछ पढ़ा सकूं। मेरे गुरु को आज्ञा को तुम्हें पालन करना होगा, श्रीराममिश्र ने विनीत भाव से आज्ञा को शिरोधार्य किया। आपकी कृपासे श्रीसंप्रदायको अविच्छिन्न रूपसे धारण करके यामुनको सौंप दूंगा। आप अनु-ग्रह कीजिये श्रीराममिश्र ने कहा।

समयानुसार श्रीनाथमुनि के पुत्र श्रीईश्वरमुनि के पुत्र यामुन हुये जो सामान्य शास्त्रों का अध्ययन कर एक राजा की तरह सुख पूर्वक ठाट बाट से रहते थे। श्रीराममिश्र को यह बात मालूम हुई तो वह उनके महल पर गये। दरबारियों ने भेंट न होने दी। राममिश्र ने एक उपाय सोचा, वह अलर्क पत्ता का शाक प्रतिदिन यामुन के रसोइया तक पहुंचाता, वह उसकी भाजी बनाकर यामुन को खिलता। यह शाक यामुनको बहुत प्रिय था। उसमें सत्व गुण के वृद्धि करने की शक्ति जो थी। एक दिन राममिश्र उस शाक को न ले गये, भाजी न बनी और न परोसी गयी। यामुन के पूछने पर रसोइये ने बताया कि एकब्राह्मण आकर उस शाक को दे जाता था, आज वह नहीं आया। अब जब भी वह आवे तो मेरे पास ले आना, यह यामुन ने कहा। दूसरे दिन राममिश्र आये, रसोइया उन्हें यामुनाचार्य के पास ले पहुंचा। यामुनाचार्य ने प्रमाण करके उन्हें एक ऊंचे आसन पर बैठाया और सविनय पूछा कि आपने बड़ा कष्ट उठाया है, आप क्या चाहते हैं। मैं कुछ नहीं चाहता, हाँ आपके पूर्वजों का धन जो मेरे पास है उसे आपको सौंप कर मुक्त होना चाहता हूं। उसके लिये आपको एक निर्जन स्थान पर आनाहोगा, जहाँ मैं बे रोक टोक आ सकूं। उस दिन से अठारह दिन में श्रीगीता के अठारह अध्यायों का सार बताया। उपदेश का असर हुआ और यामुन ने पूछा कि वह मेरा धन कहाँ है और कब मिलेगा?

श्रीराममिश्र यामुनाचार्य को श्रीरङ्गम् ले गये। वहाँ परमात्मा श्रीरंगनाथ का दर्शन कराया उस मूर्ति को देख यामुनाचार्य मुग्ध हो गये और राममिश्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। तब से यामुनाचार्य श्रीरंगम् में रहकर सम्प्रदाय प्रवचन करने लगे। श्रीराममिश्र भी अपने आचार्य पुण्डरीकाक्ष की आज्ञा का पालन कर कृतकृत्य हो गये, कुछ समय तक श्रीरंगम् में ही रहकर बाद में अपने आचार्य के चरण कमलों का ध्यान करते हुये नित्यविभूति पधार गये।

राम भज लो (कविता)

जिन्दगी का कोई भी ठिकाना नहीं।
कल क्या हो किसी ने भी जाना नहीं॥
आज हँसते हुए खिलखिलाते हुये; चार यारों को हँसते हँसाते हुये।
वेद वचनों को मिथ्या बताते हुये, अपने मौजों के दीपक जलाते हुये।
अपनी बिगड़ी को फिर भी बनाना नहीं॥ जिन्दगी ....
जिसने झूंठे प्रपञ्चों में जाने दिया, सद्गुणों को कभी न आने दिया।
स्वांसकी हर घड़ीको गंवाने दिया, गीत शान्तिके फिर भी न गाने दिया।
साथ छूटे नहीं, यह गंवारा नहीं॥ जिन्दगी ...
लाख जन्मे यहाँ और मरते गये, पाप पुण्यों की गठरी को ढोते गये।
धन दौलत यहीं पर तो रखते गये बन भिखारी जगत से यों रोते गये।
क्या यहीं सब रहेगा ये जाना नहीं॥ जिन्दगी ....
स्वार्थ चिन्ता के पीछे ये जाना कहाँ, कौन क्या है कभी पहचाना कहाँ।
छल प्रपञ्चोंकी माया को त्यागा कहाँ, तो अरे सुख की वंशी बजाना कहाँ।
राम भज लो, समय फिर से मिलना नहीं॥ जिन्दगी

—श्रीओम्प्रकाश शास्त्री, भीमकुण्ड (म.प्र.)

गोदाम्बा का अवतार

[याज्ञिक सम्राट् पं० श्रीनाथप्रपन्नाचार्यजी महाराज, छपरा (विहार)]

कल्पादौ हरिणा स्वयं जनहितं कृष्णेन सर्वात्मना।
प्रोक्तं स्वस्य च कीर्त्तनं प्रपदनं स्वस्मै प्रसूनार्पणम् ॥
सर्वेषां प्रकटं विधातुमनिशं श्रीधन्विनव्ये पुरे।
यातां वैदिकविष्णुचित्ततनयां गोदामुदारां स्तुमः ॥

श्रीगोदा चतुश्लोकी के इस श्लोकानुसार भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में ही सारे चेतनों के उद्धार के लिए तीन अत्यन्त सरल सुलभ उपायों का उपदेश किया है।

१—भगवद्गुणों का गान (कीर्तन)।
२—भगवान् के चरणों की शरणागति।
३—श्री भगवान् को पुष्प समर्पण।

यद्यपि ये तीनों उपाय सर्व सुलभ हैं। तथापि जीवों को इनसे वंचित देख भगवान् के हृदय में एक व्यथा हुई, जिसे नित्य सन्निहित क्षमा प्रधान 'भू' देवी ने समझा और प्राण प्रियतम से आदेश लेकर उपर्युक्त तीनों उपायों को स्वयं आचरण में रखती हुई, इनकी महत्ता को लोगों को दिखलाने के लिये तथा इसमें जीवों को प्रवृत्त कराने के लिए श्रीविष्णुचित्तजी को उत्तम पात्र (पितारूप) में स्वीकार कर उनको (श्रीविष्णुचित्तजी को) एक तुलसी वृक्ष के नीचे से (जमीन से) प्राप्त हुई।

कर्कटे पूर्वफाल्गुन्यां तुलसी काननोद्भवाम्।
पाण्ड्ये विश्वम्भरां गोदां नमामि रंगनायकीम् ॥
माता चेत् तुलसी पिता यदि तव श्रीविष्णुचित्तो महान्
भ्राता चेद्यतिशेखरः प्रियतमः श्रीरंगधामा यदि।
ज्ञातारस्तनयास्त्वदुक्तिसरसस्तन्येन संवर्धिताः।
गोदे त्वं हि कथं त्वनन्यविभवा साधारणा श्रीरसि ॥

गोदाम्बा का परिवार

श्रीविष्णुप्रिया तुलसी ही माता हैं। हृदय में अहर्निश निवास करने के कारण जिनका नाम विष्णुचित्त है, वे ही पिता हैं। शेषावतार यतिराज श्रीरामानुज स्वामी ही भ्राता (भाई) हैं। सम्पूर्ण दिव्य देशों में अग्रगण्य श्रीरङ्गनाथ अर्चाविग्रह ही जिनके पति हैं। 'तिरुप्पावै' 'नाचियार तिरुमोलि' नामक दो दिव्य प्रबन्ध रूपी दो स्तनों से निसृत स्तन्य (दूध) से बृद्धि प्राप्त करने वाले भक्त ही आपके लाड़ले पुत्र हैं। आप सचमुच अनन्य वैभववती साक्षात् लक्ष्मी ही हैं।

गोदा नाम निर्वचन

- पृथ्वी से प्राप्त होने के कारण इनका नाम 'गोदा' पड़ा।
- द्राविड़ भाषा में इन्हें 'आण्डाल' कहते हैं।

स्वर्गेषु पशुवाग्वज्रदिङ् नेत्र घृणि भू जले।
लक्ष्यदृष्टौ स्त्रिया पुंसि गौः ॥ कोश० ॥

इस कोश के अनुसार 'गो' शब्द के कई अर्थ हैं। जिनमें कुछ का विवेचन किया जाता है।

१—गाम् (स्वर्गं) परमपदं ददातीति गोदा।

उपनिषदों में कई जगह स्वर्ग शब्द का परमपद अर्थ लिया गया है। उसी के अनुसार यह गोदाम्बा भी अपने प्रबन्धों के सार्थ अध्ययन और अपने इस धनुर्मास व्रत के अनुकरण द्वारा सबको मोक्ष प्रदान करती है।

२—गाः (पशून्) ददातीति गोदा।

अपने इस व्रतानुष्ठान को श्रद्धापूर्वक करने वाले को गवादि पशु रूपी धन प्रदान करती हैं।

३—गाम् (वाचं) ददातीति गोदा।

अर्थात् 'तिरुप्पावै' नाच्चियार 'तिरुमोलि' नामक दो दिव्य प्रबन्ध प्रदान करने वाली हैं।

४—गाम् (दिशं) अर्चिरादिदिशं ददातीति गोदा।

अर्थात् अर्चिरादि मार्ग प्रदान करने वाली हैं।

५—गाम् (नेत्रं) दिव्यचक्षुः ददातीति गोदा।

अर्थात् दिव्यचक्षु प्रदान करती हैं जिससे शीघ्र ही भगवत्साक्षात्कार हो जाता है। जैसे—भगवान ने अपने विराट् स्वरूप को दर्शन कराने के लिये अर्जुन को दिव्यचक्षु प्रदान किया था, जिस दिव्यचक्षु के द्वारा अर्जुन ने भगवान् के विराट् स्वरूप का दर्शन कर लिया।

६—गाम् (भुवं) ददातीति गोदा।

स्वाश्रितों को भूलोकाधिपत्य प्रदान करती हैं।

७—गाम् (लक्ष्यं) परमात्मानं ददातीति गोदा।

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते' इस श्रुति वाक्यानुसार 'लक्ष्य' पदसे परमात्मा का ही ग्रहण होता है। परम पुरुष को प्राप्त कराती है अर्थात प्रभु की प्राप्ति में स्वयं पुरुषकार होकर प्रभुको सुलभ रूप से प्राप्त कराती हैं।

जैसे विभीषण शरणागति के प्रसंग में भगवान् राम अपनी प्राप्ति का साधन स्वयं व्यक्त करते हुए कहते हैं—

'निर्मल मन जन सो मोहि पावा'।

अर्थात् निर्मल मति वाले जन ही प्रभु को प्राप्त करते हैं तब प्रश्न होगा कि—निर्मल मति कैसे होती है? इसके उत्तर स्वरूप बालकाण्ड के प्रार्थना-प्रसंग में कलिपावनावतार श्री गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज निर्मलमति प्राप्ति का साधन बताते हुए कहते हैं—

जनक सुता जग-जननी जानकी। अतिशय प्रिय करुणा निधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मलमति पावउँ॥

गोदाम्बा का माहात्म्य

देहात्मवादी लोगों की अपेक्षा 'ऋषि' लोग उच्चकोटि के माने जाते हैं, क्योंकि शरीर को

ही आत्मा मानने वाले लोग शरीर के लालन, पालनादि में अहर्निश लगे रहते हैं, परन्तु ऋषि लोग देह से भिन्न आत्मा को मानते हुए, आत्म साक्षात्कार के लिए यम, नियमादि अष्टाङ्ग योग साधन के द्वारा आत्मसाक्षात्कार करके परिनिष्पन्न हो जाते हैं, तथापि कभी २ अपने पुत्र मित्र, कलत्रादि के द्वारा काम-क्रोधादि के वश में हो ही जाते हैं। जैसे—श्रीवसिष्ठ जी एवं श्रीविश्वामित्र जी का परस्पर कलह श्रीगौतम महर्षि का अपनी धर्मपत्नी श्रीअहल्या के प्रति शाप। श्रीविश्वामित्र जी का मेनका के साथ सम्बन्ध। इत्यादि।

परन्तु 'आल्वार' लोग तो ऐसे नहीं थे। उन लोगों का एक मात्र दुःख 'भगवद्विश्लेष' और सुख 'भगवद् संश्लेष' ही था। इसलिए त्रिकाल सत्य है कि ऋषियों की अपेक्षा 'आल्वार' लोग परम सात्विक थे। श्रीगोदाम्बा तो इन आल्वारों से भी बढ़कर मानी जाती हैं। क्योंकि इन्होंने भगवान को स्वयं जगाया है। कहा भी है—

'नीलातुंगस्तनगिरितटी सुप्तमुद्बोध्य कृष्णम्'

एक ही परिवार के कई भाइयों में एकही को सन्तान होने से, सम्पूर्ण भाइयों की सम्पत्ति जैसे एक को ही नियमतः प्राप्त है। वैसे ही सम्पूर्ण आल्वारों में एक श्रीविष्णुचित्तात्मजा 'गोदा' सम्पूर्ण आल्वारों की ज्ञान-सम्पत्ति की पूर्णाधिकारिणी हैं, अर्थात् सभी आल्वारों का ज्ञान एक ही श्रीगोदा में पाया जाता है।

यद्यपि आल्वारों के चतुः सहस्र ग्रन्थ भगवद्भक्ति पूरिपूरित होने से अति उत्तम हैं, तथापि हमारे श्रीभाष्यकार तो तिरुप्पावै' प्रबन्ध का ही निरन्तर स्मरण किया करते थे, जिससे उनका नाम तिरुप्पावै जीयर' पड़ा था। इसका कारण उस ग्रन्थ का उत्तमोत्तम होना ही तो है।

स्त्री वर्ग में महारानी श्रीसीताजी माननीयतमा मानी जाती हैं। परन्तु श्री गोदाम्बाजी का महत्व उनसे भी विलक्षण ढंग का है।

श्री सीताजी के साथ श्रीगोदाम्बा जी की तुलना

१—श्री सीताजी का अवतार एक साधारण भूमि (जमीन) से हुआ। परन्तु श्रीगोदाजी का अवतार तुलसी नन्दन वाटिका से 'जहाँ के फूल और तुलसी नित्य प्रति भगवान् की सेवा में जाते थे' हुआ।

२—श्री सीताजी के पिता 'श्री जनकराज' 'कर्मणैव ही संसिद्धिमास्थिता जनकादयः' के अनुसार कर्मयोगी थे। परन्तु श्रीगोदाजी के पिता श्रीविष्णुचित्तजी तो उत्तम 'प्रपत्ति' के पुजारी थे।

३—श्री सीताजी भगवान् के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चावतार इन पाँच प्रकार के अवतारों में विभवावतार की पत्नी हैं और श्री गोदाजी सर्वसुलभावतार अर्चावतारों में प्रधान श्रीरङ्गनाथ भगवान् की पत्नी हैं।

४—श्री सीताजी के पति त्रैलोक्यवन्द्य प्रभु श्रीराम हैं और गोदाम्बाजी के पति, श्रीरङ्गनाथ जी रघुवंश एवं प्रभु श्रीराम केभी पूज्य हैं।

५—श्रीसीताजी ने अपने अवतार से रावणगृह में बन्दी रूपसे पड़ी हुई अपनी सजातियों (स्त्रियों) का ही उद्धार किया, परन्तु श्रीगोदाम्बा ने अपने प्रबन्धोंसे विजातियों (पुरुषों) का भी संसार रूपी कारागार से उद्धार किया है। तथा कर रही हैं।

६—प्रभु श्रीराम के आचार्य एक ऋषि वसिष्ठजी थे तथाप्रभु श्रीकृष्ण के आचार्य श्रीसान्दीपनी जी थे, लेकिन श्रीगोदाजी भगवान रंगनाथ की भी आचार्या हैं। आचार्य जैसे अपने सोते हुए शिष्य को ब्राह्ममुहूर्त्त में जगाकर वेद और वेदान्तार्थो का अध्ययन कराते हैं, इसी तरह श्रीगोदाजी ने भी सोते हुए भगवान को जगाकर उत्तमोत्तम उपनिषदार्थों का अध्ययन कराया।

इसके सम्बन्ध में श्रीभट्टर स्वामीजी कहते हैं—

नीलातुङ्गस्तनगिरितटी सुप्तमुद्बोध्य कृष्णं।
पारार्थ्यं स्वं श्रुतिशतशिरस्सिद्धमध्यापयन्ती ॥

७—जिस पदार्थ में 'केश' पड़ गया हो, ऐसी वस्तुओं को 'निमित्तदुष्ट' मानकर शिष्टगण उसका स्पर्श भी नहीं करते हैं, परन्तु श्रीगोदाजी के केशों से अलंकृत मालाओं के अतिरिक्त दूसरी माला प्रभु को रुचिकर ही नहीं होती।

पिता-पुत्री दोनों नन्दन-बन की सिचाई, खोदना, फूल चुनना, माला गूंथना आदि कार्यों में समय व्यतीत करते थे। दोपहर में श्रीमद्भागवत (खासकर दशम स्कन्द) की कथा कहनेसुनने में समयबिताते थे। कथा प्रसङ्गों में दो प्रसङ्ग गोदाम्बा के हृदय में घर कर गये।

१—गोपाङ्गनाओं द्वारा किया गया 'कात्यायनी व्रतानुष्ठान'।
२—गोपाल बालकों के साथ प्रातः जलपान।

पिता श्रीविष्णुचित्त स्वामी जब माला बनाकर स्नान करनेचले जाते तो श्रीगोदा उस माला को स्वयं पहनकर माला का सुखानुभव करती तथा दर्पण में अपनी सुन्दरता से प्रभु की सुन्दरता का अनुभव करतीं। एक रोज पिता ने देखकर बहुत दुःख प्रकट किया।

पिताजी दुःखी हो मन्दिर नहीं गये। दुःखीचित्त लेट जाने पर स्वप्न में प्रभु ने कहा—आज मन्दिर क्यों नहीं आये? तथा माला क्यों नहीं लाये? स्वप्न में ही विष्णुचित्तजी श्रीगोदा द्वारा माला धारण करने की बात निवेदन कर दुःख प्रकट किया। भगवान बोले-यह आज की ही बात नहीं है। मुझे वही माला अत्यन्त प्रिय है। आप उन्हें अपनी पुत्री मानते हैं वह तो मेरी प्रेयसी हैं। उनके साथ कालान्तर में मेरा विवाह होगा। स्वप्न भंग हुआ और माला लेकर मन्दिर गये और भगवान को माला धारण करायी गयी।

इधर 'कात्यायनी' व्रत का अनुभव करती हुई श्रीगोदा ने सोचा-अहा! श्रीभगवान को पति बनाने का और उनके साथ इच्छित भोगों को भोगने का उपाय तो है। तब तो मैं भी क्यों न करूं। ऐसा मन में निश्चय कर भगवान को अपना पति बनाने के लिये सन् ७३१ में 'हेमन्त' के महीने में 'धनुर्मास' व्रत प्रारम्भ किया। खूब सवेरे (प्रातः) श्रीरङ्ग श्रीरङ्ग कहते उठना, स्नान पूजा-पाठ के बाद हविष्य (खीचड़ी) का भोग भगवान को समर्पित करना और एक द्राविड़ गाथा सुनाते आरती उतारना तथा प्रार्थना करना कि आप मेरे पति बनें और भगवन्निवेदित प्रसाद को एक ही वार पाकर (खाकर) रात्रि में भूमि पर शयन करना। इस प्रकार २६ दिन बीत गये। उसी रात्रि स्वप्न में श्रीरङ्गनाथ भगवान का दर्शन हुआ, और सम्पूर्ण भोगोंका स्वाप्निक अनुभव भी हुआ, जिससे उस दिन का नाम 'भोगी' पड़ गया। उसी रात्रि को भगवान् ने गोदाजी से उनके साथ विवाह की प्रतिज्ञा भी कर ली! इस प्रकार श्रीगोदा श्रीरंगनाथ भगवान् के अर्चाविग्रह में विलीन हो गयी। तभी से गोदारंगनाथ भगवान् का अर्चन पूजन होता चला आ रहा है।

❖❖

गताङ्क से आगे—

महाभारतामृतम्

राजा धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन को समझाया। बेटा ! मेरी बात सुन, तेरा कल्याण होगा। देख सबसे प्रथम प्रजापति सोम हुए जो कौरव वंश की वृद्धि के आदि कारण हैं। सोम से छठी पीढ़ी में नहुषपुत्र ययाति जन्मे। उनके पाँच पुत्र हुये जो सब श्रेष्ठ राजर्षि थे। यदु, ज्येष्ठ और पुरु कनिष्ठ पुत्र थे। ये वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के गर्भ से पैदा हुये थे। यदु देवयानी के पुत्र और श्रीशुक्राचार्य के दौहित्र थे। वे यादवों के वंश प्रवर्त्तक हुए थे। उनकी बुद्धि मन्द थी, उन्होंने क्षत्रियों का अपमान किया था। यदु अपने भाइयों और पिता का भी निरादर करते थे। बलवान तो थे ही, हस्तिनापुर उनकी राजधानी थी, पिता ययाति ने कुपित हो यदु को शाप दिया और राज्य से भी उतार दिया। यदु के पक्षधर अन्य भाइयों को भी पिता का शापभाजन बनना पड़ा। ययाति ने कनिष्ठ पुत्र पुरु को राज्य दिया। अहङ्कारी ज्येष्ठ पुत्र भी राज्य का अधिकारी नहीं होता यह सिद्ध हो गया।

इसी प्रकार मेरे पिता प्रतीप सब धर्मों के ज्ञाता प्रसिद्ध थे। धार्मिक प्रतीप के तीन पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ देवापि, दूसरे बाल्हीक, तीसरे मेरे पिता शान्तुन थे। देवापि चर्मरोग से पीड़ित थे। वे धार्मिक सत्यवादी एवं जनता से आदरणीय थे। वे ब्राह्मणों के आदेश से चलते थे। राजा प्रतीप ने देवापि को राज्याभिषिक्त करने हेतु सभी धार्मिक कृत्य कराने आरम्भ कर दिये. किन्तु वृद्ध पुरुषों एवं जनपद के लोगों ने उस राज्याभिषेक को रोक दिया। यह राजा प्रतीप को बुरा लगा। यद्यपि देवापि सब प्रकार से योग्य थे, लेकिन पूर्वोक्त चर्मरोग के कारण दूषित मान लिये गये। जो किसी अङ्ग से हीन हो उसे देवता लोग अच्छा नहीं समझते। राजा प्रतीप को शोकाकुल देख देवापि वन में चले गये। बाल्हीक सबको छोड़ अपने मामा के घर चले गये। तब बाल्हीक की आज्ञा लेकर शान्तनु ने राज्य का शासन किया। इसी प्रकार मैं भी अङ्गहीन था, इसलिये ज्येष्ठ होने पर भी पाण्डु एवं प्रजाजनों के द्वारा राज्य से वंचित कर दिया गया। पाण्डु ने राज्य का अच्छा संचालन किया। पाण्डु के बाद उनके पुत्रों का ही यह राज्य है। मैं तो राज्य का अधिकारी था ही नहीं, फिर तू कैसे राज्य लेना चाहता है। तू पराये धन का अपहरण करना चाहता है। महात्मा युधिष्ठिर पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र हैं। वे ही इस राज्य के अधिकारी हैं। वे बड़े सज्जन हैं। जितेन्द्रिय हैं। समस्त राजोचित गुण उनमें हैं। तू राजपुत्र हैं किन्तु तेरा वर्ताव दुष्ट है। तू लोभी, पापपूर्ण विचारक है। दुर्विनीत है। तू मोह छोड़कर आधा राज्य तो उन्हें दे ही दे ऐसा करने से तू बचा भी रह सकता है।

सब गुरुजनों के समझाने पर भी मन्दबुद्धि दुर्योधन को तनिक भी चेत न हुआ। वह लाल आँखें किये सभा से उठकर चला गया। अन्य उसके मित्र भी उठकर चले गये। दुर्योधन ने उन सबको आज्ञा दी कि आज पुष्य नक्षत्र है अतः तुम सब कुरुक्षेत्र को चलो। तालध्वज भीष्म को सेनापति बनना पड़ा। ग्यारह अक्षौहिणी सेना भी कौरवों की आ गयी।

श्रीकृष्ण ने कहा हे राजन् ! इस प्रकार से वहाँ का सारा वृत्तान्त तुम्हें सुना दिया। मैंने कौरवों की सभा में साम, दाम और भेद नीति का अच्छी प्रकार से प्रयोग किया। पाँच गाँव ही

पाण्डवों को इसलिए दे दो कि उनका भी पालन करना धृतराष्ट्र का धर्म है। सारा राज्य तुम रखो। लेकिन दुर्योधन जरासा भी नहीं पिघला। अब तो दण्ड नीति के सिवाय कोई उपाय नहीं दिखाई देता है। उनकी सेना कुरुक्षेत्र में पहुंच चुकी है। वे बिना युद्ध के राज्य नहीं देंगे। अब तुम्हें विवेक से काम लेना चाहिये।

सैन्य निर्माण—

यह सुनकर युधिष्ठर ने श्रीकृष्ण के समक्ष ही अपने भाइयों से कहा—कौरव सभा का सारा वृत्तान्त तुम सबने भगवान् से अच्छी तरह सुन लिया है, अतः तुम सब भी अपनी सात अक्षौहिणी सेना लेकर कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान करो। हमारी सेना के ये सात सेनापति होंगे—द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और भीमसेन। ये सातों सूरवीर युद्ध कुशल, नीतिज्ञ, वेद-वेत्ता हैं। इन सातों पर प्रधान सेनापति किसे बनाया जाय ? पूछने पर सहदेव ने द्रुपद को इस पद के योग्य बताया। अर्जुन ने वीर धृष्टद्युम्न को भीमसेन ने शिखण्डी को, युधिष्ठर ने कहा हमें तो श्रीकृष्ण के संकेत पर चलना है, ये ही विजय के प्रतीक हैं। अतः श्रीकृष्ण जिसको कहेंगे उसी को प्रधान सेनापति बनाया जायगा। तभी हम अपने अस्त्र-शस्त्रों का अधिवासन (गन्धादि से पूजन) कौतुक (रक्षाबन्धन आदि) तथा मंगलकृत्य (स्वस्तिवाचन आदि) करके श्रीकृष्ण के अधीन हो कुरु-क्षेत्र की यात्रा करेंगे। श्रीकृष्ण ने धृष्टद्युम्न को ही प्रधान सेनापति के योग्य बताया। यह सुन पाण्डवों में प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। प्रस्थान की तैयारियां होने लगीं।

सेना के सबसे आगे भीम, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, प्रभद्रकगण, पाञ्चा-लदेशीय क्षत्रिय चले। सेना में महान् कोलाहल हो रहा था। सामान ढोने वाली गाड़ियाँ, बाजार, डेरे-तम्बू, रथ, खजाना, यन्त्रचालित अस्त्र, वैद्य साथ थे। कमजोरों, कृशकायों को उपप्लव्य से ही लौटा दिया गया। द्रोपदी भी यहीं से लौट गयीं। ब्राह्मणों को गौ तथा सुवर्ण दानकर स्वस्तिवाचन पूर्वक श्रीकृष्ण का पूजन कर पाण्डवों ने युद्ध को प्रस्थान किया था। केकयराजकुमार, धृष्टकेतु, काशिराजपुत्र अभिभू, श्रेणिमान्, वसुदान अपराजित वीर शिखण्डी ये सब वीर युधिष्ठिर को घेरकर चल रहे थे। सेना के पीछे (आधे भाग) में विराट, धृष्टद्युम्न, सुधर्मा, कुन्तीभोज, धृष्टद्युम्न के पुत्र इनके साथ चालीस हजार रथ, दो लाख घोड़े, चार लाख पैदल और साठ हजार हाथी थे। अना-धृष्टि, चेकितान आदि श्रीकृष्ण-अर्जुन को घेरे चल रहे थे। पाण्डवों की सेना ने कुरुक्षेत्र में पहुंचकर अपने-अपने शंखों की ध्वनि की, जिनकी ध्वनि आकाश समुद्र तक फैलकर प्रतिध्वनित करने लगी।

युधिष्ठिर ने एक समतल प्रदेश में जहाँ घास और ईंधन की अधिकता थी, अपनी सेना का पड़ाव डाला, जहाँ बहुत दूर तक श्मशान, देवमन्दिर नहीं थे। विश्राम के उपरान्त श्रीकृष्ण ने अर्जुन के साथ आगे बढ़कर वहाँ शिविर बनाने के योग्य भूमि को नपवाया। वहाँ हिरण्वती नामक पवित्र नदी भी थी। उसके समीप पाण्डवों का शिविर बनवाया। प्रत्येक शिविर में जल, घास, भूसी और अग्नि का संग्रह कराया था। उन शिविरों में यन्त्र नाराच, तोमर, फरसे, धनुष, कवच, ऋष्टि, तर-कस, हाथी, जो कांटेदार साज, लोहे के कवच और झूल धारण किये हुये थे।

श्रीकृष्ण के कौरव सभा के लौट जाने पर दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन, शकुनि से इस प्रकार कहा। श्रीकृष्ण पांण्डवों को युद्ध के लिए उत्तेजित करेंगे। वे युद्ध चाहते हैं। भीम और अर्जुन

श्रीकृष्ण के मत में ही रहते हैं। मैंने उनका तिरस्कार भी तो किया है। इसलिये युद्ध की सम्पूर्ण तैयारी करो। अनुचर आदेश पालन में जुट गये। चतुरंगिणी सेना सजने लगी।

श्रीकृष्ण ने कहा—दुर्योधन तो पापात्मा है ही भीष्म तथा द्रोण भी सदा उचित बात नहीं कहते हैं। केवल विदुर ही सत्य और निष्पक्ष कहने वाला है। शकुनि, कर्ण, दुःशासन तो अनुचित ही कहते हैं। उनसे तुम्हें न्याय नहीं मिल सकता है। अतः युद्ध के सिवाय कोई उचित रास्ता नहीं है। युधिष्ठिर ने युद्ध की आज्ञा देदी। वे खिन्न थे। युद्ध टालने के लिए वनवास कष्ट और अनेक दुःख सहे लेकिन उसी के तट पर आ गये। वृद्ध तथा पूज्योंका वध करके हमें विजयश्री मिल भी गयी तो उससे क्या श्रेय मिलेगा। अर्जुन ने कहा अब युद्ध से निवृत्त होना भी ठीक नहीं है।

दुर्योधन ने भी अपनी पैदल, हाथी, रथ, घुड़सवार चतुरंगिणी सेनाओं में से उत्तम, मध्यम, निकृष्ट श्रेणियों को पृथक् करके यथास्थान नियुक्त किया। वे सब वीर अनुकर्ष=रथ की मरम्मत के लिए उनके नीचे बँधा हुआ काष्ठ, तरकस, वरूथ=रथ को ढकने का बाघ आदि का चमड़ा, उपासङ्ग=जिन्हें हाथी या घोड़े उठा सकें, ऐसे तरकस, तोमर, शक्ति निषङ्ग=पैदलों द्वारा ले जाये जाने वाले तरकस, ऋष्टि=एक प्रकार की लोहे की लाठी, ध्वजा, पताका, धनुषबाण, तरह तरह की रस्सियाँ, पाश, बिस्तर, कचग्रहविक्षेप=बाल पकड़कर गिराने का यन्त्र, तेल, गुड़, बालू, विषधर सर्पों के घड़े, राल का चूरा, घण्टफलक=घुँघरुओं वाली ढाल, खड्गादि लोहे के शस्त्र, औंटा हुआ गुड़ का पानी, ढेले, साल, भिन्दिपाल=गोफियाँ, मोम के चुपड़े हुए मुग्दर, हल, विषलगे बाण, सूप, टोकरियाँ, दरात, अंकुश, तोमर, बसूले, आरे, बाघ और गेंड़े के चर्म से मढ़े रथ सींग; प्रास, कुठार, कुदाल, तेल में भीगे हुए रेशमी वस्त्र, तथा घी लिए हुये थे।

उस सेना के रथों में अमङ्गल निवारण के लिए यन्त्र औषधियाँ बाँधी गयी थीं। सभी रथों में चार चार घोड़े जुते थे, वे अच्छी जाति के थे। रथों में सौ सौ धनुष रखे थे। प्रत्येक रथ के दो दो घोड़ों पर एक एक रक्षक नियुक्त थे। वे अश्व संचालन में निपुण थे। हाथियों को स्वर्ण मालाओं से सुसज्जित किया गया था। उन पर रस्से कसे गये थे। उन पर सात सात पुरुष बैठे थे। उनमें से दो पुरुष अंकुश लेकर महावत थे, दो धनुर्धर, दो तलवार लिये, एक शक्ति तथा त्रिशूल धारण किये था। घोड़े उछल-कूद करने वाले न थे। सवारों के वश में रहने वाले थे। वे कई लाख थे। पैदल पुरुष सोने के हारों से अलंकृत थे। एक एक रथ के पीछे दस दस हाथी, एक एक हाथी के पीछे दस दस घोड़े, एक एक घोड़े के पीछे दस दस पैदल नियुक्त किये गये।

पाँच सौ हाथियों और पाँच सौ रथों की एक सेना, दस सेनाओं की एक पृतना और दस पृतनाओं की एक वाहिनी होती है। सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजनी, चमू, वरूथिनी और अक्षौहिणी इन समानार्थक नामों से सेना कही गयी है। इस प्रकार दोनों पक्षों की कुल अठारह अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्र में थी। पाण्डवों की सात अक्षौहिणी और कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी। पचपन पैदलों की एक टुकड़ी को पत्ति, तीन पत्तियाँ मिलकर एक सेनामुख—इसी को गुल्म कहा जाता है। तीन गुल्मों का एक गण होता है। दुर्योधन की सेना में ऐसे गण दस हजार से अधिक थे। दुर्योधन ने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, सिंधुराज जयद्रथ, कम्बोजराज सुदक्षिण, कृतवर्मा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबल पुत्र शकुनि तथा बाल्हीक इस प्रकार ग्यारह सेनानायक नियुक्त किये। वह प्रतिदिन उनकी पूजा करता था।

इसके बाद दुर्योधन भीष्म जी के पास गया और हाथ जोड़कर बोला पितामह ! सुना जाता है कि समस्त ब्राह्मणों ने कभी हैहयवंश के क्षत्रियों पर आक्रमण किया था, उनका साथ वैश्यों, शूद्रों ने भी दिया था किन्तु उन्हें पीठ दिखाकर भागना पड़ा। उसका कारण था योग्य सेनापति का अभाव। पुनः जब योग्य सेनापति बनाकर धावा बोला तो वे विजयी हुये। आप मेरे शुभचिन्तक हितैषी हैं। आप सदा धर्म में तत्पर रहते हैं अतः आप हमारे प्रधान सेनापति हो जाइये। हमारे रक्षक अग्रगामी हों। भीष्म ने कहा—दुर्योधन ! मेरे लिए जैसे तुम हो वैसे ही पाण्डव हैं। मैं पाण्डवों के पूछने पर उन्हें अवश्य ही हित की बात बताऊंगा और तुम्हारे लिए युद्ध करूंगा। मैं अर्जुन को छोड़ किसी को योद्धा नहीं मानता, न वह मेरे सामने युद्ध करने ही आयेगा। मैं पाण्डवों की हत्या नहीं करूंगा। मैं प्रतिदिन पाण्डवों के दस हजार सैनिक मारूंगा। एक बात और सुनलो—या तो पहले कर्ण ही युद्ध करले या मैं ही युद्ध करूं क्योंकि वह सूत्रपुत्र सदा मुझसे युद्ध में अत्यन्त स्पर्धा करता है। कर्ण ने तुरन्त कहा—राजन् ! मैं भीष्म के जीते जी किसी प्रकार का युद्ध नहीं करूंगा। इनके मारे जाने पर अर्जुन से युद्ध करूंगा। तदनन्तर दुर्योधन ने भीष्म जी का प्रधान सेनापति पद पर विधि से अभिषेक किया। बाजे बजने लगे। उस समय बिना बादल के ही रक्त की वर्षा होने लगी। अशुभ वाणियां सुनाई पड़ीं। धरती डोलने लगी। योद्धा घबरा उठे। सियारिनियां रोने लगीं।

भीष्म जीको सेनापति बनाकर ब्राह्मणों से स्वास्तिवाचन कराया गया, उन्हें भूरि दक्षिणायें दी गयीं। दुर्योधन भीष्म जी को आगे करके भाइयों के साथ कुरुक्षेत्र को गया। वहाँ शिविर को सन्निवेश किया।

इधर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और सेनानायकों से कहा कि तुम सब सावधान होकर व्यवस्थित हो जावो। तुम्हारा प्रथम युद्ध भीष्म जी से होगा। श्रीकृष्ण ने उस बात का अनुमोदन किया। अर्जुन को भी नेता और श्रीकृष्ण को उनका सारथी नियुक्त किया। इसी समय नीलाम्बरधारी श्रीबलराम जी ने पाण्डवों के शिविर में सिंह के समान प्रवेश किया। उनके नेत्र अरुण थे। उनके साथ अक्रूर, गद, साम्ब, उद्धव, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि थे। उन्हें देख सब उठ खड़े हुये। सबने उनका समादर किया। युधिष्ठिर ने अपने हाथ से उनका कर स्पर्श किया। श्रीकृष्ण आदि सबने उन्हें प्रणाम किया। विराट और द्रुपद जी को प्रणाम कर श्रीबलराम युधिष्ठिर के साथ बैठे। बलराम जी ने श्रीकृष्ण से कहा—जान पड़ता है अब यह नरसंहार टाला नहीं जा सकता है। इस युद्ध के बाद आप सबको अक्षत शरीर से देख प्रसन्न होऊंगा। मैंने कई बार श्रीकृष्ण को समझाया था कि अपने सभी सम्बन्धियों के प्रति एक सा वर्ताव करो लेकिन ये तो पाण्डवों के प्रति अधिक निछावर हैं। जान पड़ता कि इस युद्ध में पाण्डवों की विजय होगी क्योंकि श्रीकृष्ण इस पक्ष के पक्षधर हैं। मैं तो श्रीकृष्ण के बिना कुछ भी नहीं कर सकता। भीम और दुर्योधन दोनों ही मेरे शिष्य हैं। इसलिए मैं सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों में तीर्थाटन के लिए जाऊंगा। क्योंकि मैं नष्ट होते कौरवों की उपेक्षा नहीं कर सकूंगा। इस प्रकार वे सबसे विदा लेकर तीर्थयात्रा को चले गये।

❖

—क्रमशः

श्रीगोदा चतुश्श्लोकी

हिं० अनु०—श्रीमान् विद्वान् स्वामी गोपालाचार्य जी महाराज, नडिगड्डिपालेम्।

★

नित्याभूषा निगमशिरसां निस्समोत्तुंगवार्ता
कान्तो यस्याः कचविलुलितैः कामुको माल्यरत्नैः।
सूक्त्या यस्याः श्रुतिसुभगया सुप्रभाता धरित्री,
सैषा देवी सकलजननी सिञ्चतान्मामपाङ्गैः॥ १॥

अनु०—उपनिषदों में नित्यालंकार की तरह प्रकाशमान होने वाली, श्रीगोदाम्बा जी की प्रशंसा जितनी अधिक है उतनी अधिक किसी की नहीं है। इनके नाथ श्रीरङ्गनाथजी, जिस माला को श्रीगोदादेवी जी अपने केशपाश में धारण कर पवित्र कर रख देतीं थी, उसी श्रेष्ठ पुष्प माला को नित्य धारण करने की उत्कट इच्छा रखते हैं। सुनने में महान् आनन्द देने वाली श्रीगोदाम्बाजी की कविता से ही संसार की सारी प्रजा सकल संप्रदायाभिज्ञ हो जाती है, ऐसी सम्पूर्ण लोक की माता, भगवान् की प्रिय पत्नी श्रीगोदादेवी जी अपने नेत्रों के कोने के दृष्टिपात से मुझे सींचने की कृपा करें॥१॥

माता चेत् तुलसी, पिता यदि तव श्रीविष्णुचित्तो महान्
भ्राता चेद् यतिशेखरः प्रियतमः श्रीरंगधामा यदि।
ज्ञातारस्तनयाः त्वदुक्तिसरसस्तन्येन संवर्धिताः,
गोदा देवि ! कथं त्वनन्यसुलभा साधारणा श्रीरसि॥ २॥

हे गोदे ! मातः ! आपकी माता पवित्र तुलसी हैं। आपके पिताजी पूज्य श्रीविष्णुचित्त हैं। यतिराज श्रीभाष्यकार आपके भ्राता हैं। आपके प्रियतम वल्लभ श्रीरङ्गनाथ जी हैं। आपका प्रसाद रूप 'तिरुप्पावै' और 'नाच्चियार तिरुमोलि' प्रबन्ध हैं, उनके सारार्थ रूप दूध के अनुभव से परिपुष्ट ऐसे सब पुण्यात्माजन आपके पुत्र हैं। ऐसी हे श्रीगोदाम्बाजी आप मात्र भगवान् को सुलभ सरल साधारण संपत्ति जैसी होती हो॥२॥

कल्पादौ हरिणा स्वयं जनहितं दृष्टेन सर्वात्मना
प्रोक्तं स्वस्य च कीर्तनं प्रपदनं स्वस्मै प्रसूनार्पणं।
सर्वेषां प्रकटं विधातुमनिशं श्रीधन्विनव्ये पुरे,
जातां वैदिकविष्णुचित्ततनयां गोदामुदारां स्तुमः॥ ३॥

श्रीगोदाम्बाजी ने अवतार लेने के पहले ही सोचा था कि 'मैं भूमि पर अवतार लेकर जीवों को कैसे उद्धार कर पाऊंगी' इस विषय पर दीर्घकाल तक विचार करने के पश्चात् मालूम हुआ कि भगवान् ने तो सृष्टि के प्रारम्भ में ही इस शंका का समाधान सोचकर बता दिया कि सम्पूर्ण चेतनों के उद्धार के लिए 'भगवत्शरणागति, पुष्प माला बनाकर उन्हें प्रभु को समर्पण करना और भगवद्-गुणगान' ये तीन ही पर्याप्त हैं। इनका अनुष्ठान करने वाले चेतन को मोक्ष सुनिश्चित रूप से मिलेगा। इन्हीं तीनों अनुष्ठानों को अपने नित्यानुष्ठान से संसारी जीवों को सिखाने के लिये उदार श्रीगोदाम्बाजी श्रीविल्लिपुत्तूर में श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की पुत्री-रूप में अवतीर्ण हुई, ऐसी श्री गोदामाई को हम सहस्रों प्रणाम समर्पण करते हैं ॥३॥

आकूतस्य परिष्क्रियामनुपमामासेचनं चक्षुषो-
रानन्दस्य परम्परामनुगुणामारामशैलेशतुः ।
तद्दोर्मध्यकिरीटकोटिघटितस्वोच्छिष्टकस्तूरिका-
माल्यामोदसमेधितात्मविभवां गोदामुदारां स्तुमः ॥ ४ ॥

भावगर्भित दृष्टि से देखना माता का अलंकार है। श्रीगोदा देवी को जितना भी देखो, दृष्टा की आंखों को तृप्ति नहीं मिलती ऐसी निरूपमेय सुन्दरी हैं। माताजी के कल्याणगुणों को सुनने से अथवा उनके दर्शन करने से जो आनन्द की रसधुनि निकलती है उस धारा की अवधि (सीमा) नहीं है। वनाद्रिनाथ भगवान् सुन्दरबांहु स्वामी के वक्षस्थल में और किरीट के ऊपर श्रीगोदाजी से उपभुक्त मालाओं को धारण कराने से विदित होता है कि—'वे कस्तूरी के परिमल से वासित मालायें हैं क्या जो इतनी विलक्षण वागातीत परिमल सुगन्ध प्रकटित होता है। ऐसे अद्भुत वैभव से सम्पन्न उदार श्रीगोदाम्बा का हम निर्विराम स्तोत्र गाते हैं ॥४॥

स्वोच्छिष्टमालिकाबन्धगन्धबन्धुरजिष्णवे ।
विष्णुचित्ततनूजायै गोदायै नित्यमङ्गलम् ॥

आपके द्वारा पहले स्वयं धारण करके प्रसादित करके रखी पुष्प मालायें अतीव परिमलित अर्थात् सुगन्धित होती हैं। उन मालाओं के प्रलोभन से भगवान् को अपने वश में करने वाली श्रीगोदाम्बा हैं। ऐसी श्रीविष्णुचित्त स्वामी जी की पुत्री गोदा माई की नित्यप्रति शुभ मंगल पर-म्परायें हों।

मादृशाकिञ्चनत्राणबद्धकङ्कणपाणये ।
विष्णुचित्ततनूजायैगोदायै नित्यमङ्गलम् ॥

वह मेरी माता मुझ जैसे उपायान्तर शून्य जन के लिए अपने हाथ में प्रतिज्ञा प्रतिसर बांध-कर रहती हैं, ऐसी श्रीविष्णुचित्त स्वामी की सुपुत्री गोदाम्बाजी की नित्यप्रति शुभ माङ्गलिक पर-म्परायें हों अर्थात् उनका बारम्बार मंगल हो, यही हम मनाते हैं।

बढ़ई का बेटा बना रूस का तुलसीदास

—वचनेश त्रिपाठी 'साहित्येन्दु'

[गत माह दिसम्बर १९९० में श्रीप्रयागनारायण तिवारी (शिवाला) कानपुर स्थित दिव्यदेश के अध्यक्ष श्रीमान् बद्रीनारायणजी तिवारी संयोजक 'मानस सङ्गम' सपरिवार वृन्दावन पधारे। श्रीरङ्गमन्दिर में आप ठहरे थे। सौहार्दवश आपने श्रीरङ्गनाथ प्रेस में भी पदार्पण किया। आपकी मुझ पर विशेष आत्मीयता है। कई पुस्तकें 'नमामिरामम्', मानस संगम का इक्कीसवाँ समारोह, बरान्निकोव आदि आपने प्रदान कीं। इसी प्रो० ए. पी. 'बरान्निकोव' वोल्गा और गंगा के सेतु ने तुलसी के रामकाव्य 'रामचरित-मानस' का प्रथम रूसी पद्यानुवाद बड़ी विद्वत्ता से सन् १९४८ में मास्को से प्रकाशित कराया था। उन्हीं के विषय में संक्षिप्त परिचय को श्रीबचनेश त्रिपाठी 'साहित्येन्दु' के शब्दों में मानस संगम का कानपुर विशेष संस्करण प्रस्तुत करता है।] —सम्पादक

हो सकता है तुलसीकृत रामायण के महान् प्रेमी अलैक्सेई पेत्रोविच बरान्निकोव को मेरे द्वारा 'रूसी रामायणी' अभिहित करने में कई लोगों को आपत्ति हो या शायद उन्हें यह सम्बोधन अटपटा लगे परन्तु मेरा विचार है कि पण्डित बरान्निकोव एक महान् रामायणी ही थे। भले आप उन्हें रूसी रामायणी कह लें। समग्र जीवन उन्होंने आर्य भाषाओं तथा 'रामचरित-मानस' के गहन अध्ययन, अनन्तर 'मानस' के रूसी भाषा में रूपान्तर में खपा दिया। रामायण का रूसी अनुवाद तो उन्होंने सन् १९३६ में ही पूरा कर लिया था परन्तु वह अनुवाद था गद्य में। उसके पश्चात् वे रूसी भाषा में ही 'मानस' को पद्यबद्ध, करने में व्यस्त हो गये। उनका यह रूपान्तर कार्य अभी चल ही रहा था कि महायुद्ध छिड़ गया जिसमें रूस भी आ फँसा। परन्तु रूसी नेताओं की इस सन्दर्भ में प्रशंसा करनी होगी कि उन्होंने मार्क्सवादी चिन्तन अपनाने के बाद भी युद्ध-काल में पण्डित बरान्निकोव के कार्य की महत्ता समझी और उन्हें तदर्थ एवं सुरक्षित तथा स्वास्थ्यप्रद जगह बोरोबोये भिजवा देने की व्यवस्था की। बोरोबोये मध्य एशिया के कजाकिस्तान में है। वहीं रह कर बरान्निकोव ने रामायण के रूसी पद्यानुवाद का शेष कार्य पूर्ण किया। क्या यह उल्लेखनीय नहीं कि जब रूस महायुद्ध में फँसा था, उस कठिन बेला में भी रूसी कम्युनिस्ट पार्टी तथा वहाँ के शासन ने अपने देश के एक ऐसे सांस्कृतिक कार्य को पूरा होने में पूरा सहयोग दिया जिसका मूलाधार एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास का लिखा 'रामचरित-मानस' था। दूसरा देश होता तो कह सकता था कि यहाँ तो लड़ाई आँगन तक आ गयी, आपको रामायण की पड़ी है। यही नहीं, रूसी सरकार ने रामायणी पण्डित बरान्निकोव को मौके पर 'लेनिन पदक' प्रदान करके सम्मानित किया। लेनिन पदक कम्युनिस्ट पार्टी शासन वाले रूस देश का सर्वोच्च गरिमा मण्डित सम्मान या पुरस्कार माना जाता है, और ये पण्डित बरान्निकोव कोई मार्क्सवाद के पण्डित न थे, न कम्युनिस्ट पार्टी की नजर में कोई 'कमिस्सार' ही थे; वरन वे साधक थे 'रामायण' और भाषा विज्ञान के। उन्हें शोध कार्य

करते समय गुरू भी ऐसे ही मिले थे। वे थे संस्कृतज्ञ श्चेरबात्स्की और ओल्देन बुर्ग। उन्हीं विद्वानों के मार्ग-दर्शन में बरान्निकोव ने आर्य भाषाओं का गहन अध्ययन किया। यह बात है पैत्रोगाद विश्वविद्यालय की जिसे आज लेनिनग्राद विश्वविद्यालय कहते हैं। 'लेनिन पदक' के पूर्व बरान्निकोव को आर्य भाषाओं और यूरोपीय भाषाओं के लिये तैयार किये गये उनके व्याकरण ग्रन्थ पर पदक प्राप्त हुआ था। क्रांतिकाल (१९१७) के बाद उन्हें उक्त विश्वविद्यालय के विश्व प्रसिद्ध भारतीय भाषा विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। इस पद पर कार्य करते हुए उन्हें सन् १९३९ में रूसी अकादमी में शामिल किया गया। यह बडे सम्मान की बात थी। रूसी जनता भारत का सही स्वरूप समझे, उसकी संस्कृति एवं परम्पराओं से ठीक ठीक परिचित हो, यही बरान्निकोव के कार्य का उद्देश्य रहा। इसके लिए उन्होंने बहुत श्रम करके भारतीय भाषाओं के रूसी पाठ तैयार किये। साथ ही कई भारतीय ग्रन्थों को रूसी में अनूदित किया।

रामायण का रूसी अनुवाद कार्य करते समय वे सदैव तुलसीकृत 'रामायण' की एक प्रति अपनी मेज पर सामने रखते थे। फारस के प्राचीन धर्म ग्रन्थ जेन्दावास्ता (छन्दशास्त्र) की भाषा भी चूंकि संस्कृत से साम्य रखती है इसलिए बरान्निकोव ने उसका गम्भीर अध्ययन किया। जर्मन भाषा के भी वे अच्छे जानकार थे। उनका कहना था कि 'भारत को सही तौर से जानना है तो उसकी भाषा, साहित्य, संस्कृति और इतिहास को समझना होगा। तभी भारत का वास्तविक परिचय प्राप्त कर सकते हैं और वे इसी सांस्कृतिक साधना में अपना जीवन खपा गये।'

आज भी रूसी रामायण के उस महान् रामायणी का रूसी जनता में बड़ा मान है। यद्यपि वे थे एक गुदड़ी के लाल। गरीब परिवार में जन्मे थे। पिता बढ़ई थे। वह उन्हें सम्यक् शिक्षा न प्राप्त करा सके। अतः वे खुद परिश्रम करके पढ़ते रहे। संघर्ष किया। सिर्फ चार साल में ही उन्होंने किएव विश्वविद्यालय में कीर्ति अर्जित कर ली क्योंकि इतने काल खण्ड में उन्होंने तीन पाठ्यक्रम (कोर्स) पूर्ण कर लिए थे, पालने में ही पूत के पाँव दीख गये, और जौलोतोनीशा (यूक्रेनिया) में जन्मा यह बढ़ई का बेटा एक दिन लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के संस्कृतज्ञ प्रोफेसरों के चरणों के समीप आ खड़ा हुआ, एक जिज्ञासु एक संस्कृतज्ञ, एक शोधार्थी बनकर। आज 'कोमोरोव' में उनकी समाधि है, उस पर भी हिन्दी में तुलसीदास के दोहे के ये शब्द अङ्कित हैं—

'भलौ भलाइहिं पै लहै।'

अर्थात् भला आदमी अपनी भलाई के रास्ते से डिगता नहीं। रामायण का यह दोहा बरान्निकोव को बहुत रुचता था। वह मनीषी अन्तरंग रूप से भारतमय हो गया था।

'निशिवासर राम रटो'

न मिटै भव संकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिरागु; न ग्यान कहूं सब लागत फोकट झूँट-जटो ॥
नटु ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
'तुलसी' जो सदा सुख चाहिये तौ रसना निसिबासर रामु रटो ॥

(कवितावली)

गोदा तेरे रँग महल में

गोदा तेरे रंग महल में धनुर्मास मृदुमास चल रहा ।
आभारी सब भाव भरोसे जिनका दैनिक भाव चल रहा ॥
भोर भये यमुना को जाती मन मन्दिर को खूब सजाती ।
माखन मिश्री भोग लगाकर करती फिर श्रृंगार आरती ॥
सचमुच तूने शेष धरा से इस स्थल को मुक्त किया है ।
भू-मण्डल में पूज्य हुआ यह धाम नहीं गोलोक हुआ है ॥
सुनते हैं रसिकों से मुनिजन ध्यान ध्येय सब धूल हुआ है ।
मुरली वाले कृष्ण कन्हैया कंटक पथ अवतीर्ण हुआ है ॥
सूर सुरों की संगत सारी पद तुलसी रैदास भी भाई ।
मीरा की पदचाप सुरीली मधुर धुनि हरिदास से आई ॥
खान रसिक वृजवास सिखाया श्रीगोदा के मन को भाया ।
मन वचनों कर्मों से लेकर मन्त्रमुग्ध हो सहज निभाया ॥
प्रण पूजन परसाद सभी तो लक्ष्मी ने विधि-भाँति सजाया ।
धन्य-धन्य हो धन्य धरा ये जिस पर मन्दिर रंग बनाया ॥
देव खडे पछतावा करते वैष्णबजन के भाग सराते ।
रामानुज का दिव्य प्रबन्धन ताल वाद्य से सभी सजाते ॥
तूने है ये मास बिताया सकल व्रतों से है अपनाया ।
धन्य भाग गोदा तेरे हैं स्वयं हरी ने तुम्हें सजाया ॥
बढ़भागी हो बड़ी हटी हो तज वैकुण्ठ धरा पर आया ।
मास कठिन ये बीत न जाये तुमको उसने आ अपनाया ॥आ.कृष्ण.

❀ विद्यार्थी ध्यान दें ❀

अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः । आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ॥१॥
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा त्यागित्वमेव च । एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥२॥
(महाभारत उद्योगपर्व ४० अध्याय ४-५)

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् । सुखार्थी चेत् त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥३

गुरुजनों की सेवा न करना, शीघ्रता का स्वभाव, अपनी प्रशंसा की डींग हाँकना ये विद्या-प्राप्ति के तीन शत्रु हैं ॥१॥

आलस्य, मद, मोह, चंचलता, गोष्ठी, अपने प्रियजनों के बीच में अधिक समय तक बातें करते रहना स्तब्धता, अभिमानिता, त्यागिता ये सात दोष बिद्या चाहने वालों को त्याग देने चाहिये ।२॥

सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ, विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ, सुख चाहने वाले को बिद्या त्याग देनी चाहिए। विद्या चाहने वाले को सुख त्याग देना चाहिए।

❖

गतांक से आगे—

मोक्ष का सर्वोत्तम तथा सबसे सुलभ साधन

प्रपत्ति

लेखक—प्राचार्य डा० जयनारायण मल्लिक, एम. ए. द्वय,

प्राप्त-स्वर्ण-पदक, पी० एच० डी०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार

मरने के समय व्यक्ति लकड़ी और पत्थर की तरह बेहोस और निश्चेष्ट हो जाता है। तब वह मेरा स्मरण कैसे करेगा ? तब या उस समय मैं ही अपने शरणागत को याद करता हूं, अपने प्रपन्न का स्मरण करता हूँ और उसे परमपद ले जाता हूं। मरने के समय प्रपन्न को भले ही ज्ञान न रहे, पर मुझेतो याद है कि एक दिन उसने मेरा शरणागत होकर मेरे चरणों पर आत्म-समर्पण कर दिया था।

शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय, तिन्हिं बिलोकत हानि॥

पत्नी की रक्षा, पत्नी की प्रतिष्ठा का भार जैसे पति पर रहता है, उसी प्रकार प्रपन्न की रक्षा प्रपन्न को भव-सागर से पार उतारने का भार परमात्मा के ऊपर रहता है। प्रपन्न तो उनके श्री चरणों पर आत्म-समर्पण कर निश्चिन्त हो जाता है।

स्तोत्ररत्न या आलवन्दार स्तोत्र में प्रपत्ति की झलक—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी,
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनो नान्यगतिः शरण्यं,
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

श्रीयामुनाचार्य स्वामी कहते हैं—"हे भगवन्, मैं धर्म निष्ठ नहीं हूँ। धर्म निष्ठा कर्म-योग के अन्तर्गत हैं। सफल कर्म-योग के लिए निष्काम, निर्लिप्त और अनासक्त होना आवश्यक है। वासना मेरी मरी नहीं है और अचानक मुझसे हजारों निन्दित कर्म करा देती है। मैं आत्म-ज्ञानी नहीं हूँ, क्योंकि आत्म-ज्ञान ज्ञान-योग के अन्तर्गत है और सफल ज्ञान-योग के लिए स्थित-प्रज्ञ होना आवश्यक है। मेरी बुद्धि स्थिर ही नहीं रहती। असंख्य जन्मों के प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण, कर्मों का रस पीकर वासना वलवती हो गई है और विषय-सामग्रियों को आते देखकर अन्त: प्रदेश में नाचने लगती है। आपके चरणारविन्दों में मेरी भक्ति भी नहीं है, क्योंकि भक्ति-योग के लिए तैल-धारा के समान अनवरत आपका ध्यान रहना आवश्यक है। मुझसे तो एक क्षण भी एकाग्रचित्त से आपका ध्यान नहीं वन पड़ता। मेरे पास न धन है, न वल है, न विद्या है। मेरे पास कुछ भी नहीं है। कर्म-योग, ज्ञानयोग और भक्ति-योग, सभी उपायों को छोड़कर मैं अनन्य और अकिंचन भाव से आपके शरणागत होता हूँ। मुझे किसी दूसरे की आशा या आसरा नहीं है, मेरे तो आपही उपाय हैं।

श्रीराम चरित मानस में प्रपत्ति की झलक—

सखा नीति तुम नीकि विचारी ।
मम प्रन शरणागत भय हारी ॥'
'कोटि विप्रवध लार्गाहि जाहू ।
आएं सरन तजौं नहिं ताहू ॥
सनमुख होहिं जीव मोहि जबहीं ।
जन्मकोटि अघ नासहिं तब ही ॥'
'जननी जनक बन्धु सुत दारा ।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सबकी ममता ताग बटोरी ।
मम पद मनहिं बाँधि बटि डोरी ॥
सम दरशी इच्छा कछु नाही ।
हरष शोक भय नहिं मन माही ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे ।
लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥'
'जो नर होइ चराचर द्रोही ।
आवै समय सरन ताकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना ।
करऊँ सद्य तेहि साधु समाना ॥'

प्रपन्न का तो सारा भार भगवान् ले ही लेते हैं, पर प्रपन्न का भी कर्त्तव्य होता है—जीवन भर प्रभु की प्रसन्नता के लिए सारे कर्मों को भगवत्कैंकर्य समझ कर करते जाना। शरणागति के बाद पत्नी की तरह प्रपन्न का भी एक ही कर्त्तव्य रह जाता है—'आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।' परमात्मा के अनुकूल कार्यों को करना और उनके प्रतिकूल कार्यों को नहीं करना। जिस कार्य से वे प्रसन्न हों जो कार्य उनको रुचे,जो उनकी इच्छा के अनुसार हो अर्थात् अच्छे काम,पत्नी की तरह प्रपन्न करें,और जिसकार्यसे परमात्मा नाराज हो जायँ, जो उनकी इच्छा के विरुद्ध हो, वैसा कार्य अर्थात् बुरे कार्य प्रपन्न नहीं करें। पत्नी पति के अनुकूल अपना जीवन बना डालती है, पति की इच्छा ही उसकी इच्छा है। उसी प्रकार प्रपन्न को भी परमात्माके अनुकूल अपना जीवन बनाना होगा परमात्माकी इच्छा ही उसकी इच्छा होनी चाहिए। मनुष्य दुनिया से कुछ लेता है और दुनिया को कुछ देता है। लेता है 'आहार' और देता है 'आचरण (कर्म)।' दोनों पवित्र और सन्तुलित होने चाहिएँ। प्रपन्न के लिए भगवान् ने कह दिया है—

'यत्करोषि यदश्नासि ... . ।
.... तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥'
(गीता ९।२७)

जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, सब मुझे अर्पित कर दो।' हमें अपने सभी भोज्य पदार्थ और सारे आचरण या कर्म परमात्मा को समर्पित कर देने हैं। अतः हम वही भोजन या भोग ले सकते हैं और वही कर्म कर सकते हैं, जो परमात्मा को अर्पित होने के योग्य हों। अपवित्र भोजन और अनुचित तथा कलुषित कर्म तो परमात्मा को समर्पित होंगे नहीं, परमात्मा उन्हें स्वीकार ही नहीं करेंगे। अतः प्रपन्न का आहार और आचरण स्वतः ही पवित्र रहना चाहिए।

पत्नी कितनी भी सती साध्वी क्यों न रहें, किन्तु पति के समीप अपने को अनन्त अपराधिनी ही समझती है, उसी प्रकार प्रपन्न का भी नीचानुसन्धान आवश्यक है। भगवान् के समक्ष प्रपन्न अपने को अनन्त अपराधी समझे।

'न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके,
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द,
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे ॥'
(आलवन्दार स्तोत्र)

'ऐसा निन्दित कर्म नहीं है,
जिसे न शतशः कर पाया हूं।
जीवन की झोली में प्रभुवर,
कंकड़ कंटक चुन लाया हूं।
लिये धूल कण काम-क्रोध के,
यौवन की आन्धी चलती है।

माया के शुभ्र - वसन धारण कर,
मेरा मन मन्थन करती है।
जीवन - नौका जीर्ण पड़ी है,
उठती प्रबल बयार।
भव-सागर में ज्वार 'उठा है,
कैसे उतरूं पार ।।'

तभी प्रपत्ति की भावना उसे आश्वासन देती है—

'अशरण - शरण, पतित - पावन हैं,
मेरे प्रियतम प्राणाधार!
दीन, अकिंचन, निःसहाय हूँ,
वही करेंगे बेड़ा पार ।।'

प्रपन्न ने तो भगवान् के श्रीचरणों पर आत्म-समर्पण कर दिया है, अतः उसका तन-मन-धन, सब कुछ परमात्मा का है। इसलिए वह अपने समय का, शक्ति का, और धन का दुरुपयोग नहीं कर सकता। समय, शक्ति और धन को व्यर्थ गँवाना एक महान् अपचार है। इनका उपयोग केवल भगवत्कैंकर्य में ही हो सकता है। एक क्षण भी हम बिना भगवत्कैंकर्य के नहीं रह सकते। जीवन के सारे कर्म तो हमें भगवत्कैंकर्य के रूप में करने ही हैं; शरीर में नवीन स्फूर्ति और उत्साह लाने के लिए खेल, विश्राम और मनो विनोद भी भगवत्कैंकर्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। पर व्यर्थ गपशप में, निरर्थक वाद-विवाद में और ऐसे कामों में, जिनसे अपना या पराया, किसी का भी कल्याण नहीं होता हो, समय, धन और शक्ति नहीं लगाना चाहिए।

प्रपन्न अपने को अनन्त अपराधी समझ कर भगवान् से कहता है—'अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे। अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ।।'—आलवन्दार स्तोत्र 'हे भगवन्, मैंने जीवन में असंख्य अपराध किये हैं, हजारों अपराध का पात्र हूं। भयंकर भव-सागर में (संसार रूपी समुद्र के उदर में) गिरा हुआ हूँ। मेरे उद्धार का कोई उपाय नहीं है, मैं आपही को अपना उपाय मानकर आपकी शरण में आ गया हूं, कृपया मेरी रक्षा करें और मुझे भोग-वादी संसार से निकाल कर अपने ही धाम में अपने समान बना डालें।'

यह निश्चित है कि प्रपन्न कभी न कभी मोक्ष और परमपद को प्राप्त करेंगे ही। प्रपन्न के रक्षक स्वामी और उपाय तो भगवान् ही हैं। भगवान् की शरणागति ही एक मात्र प्रपन्नों का साधन है। उन्हें केवल एकमात्र भगवान् को पकड़ना है, इधर उधर भटकना नहीं हैं। जीव स्वभावतः भगवान् का शेष और भगवद्दास है। प्रपन्न को केवल अखंड श्रद्धा, विश्वास और प्रेम भगवान् में रखना है, अवस्था और सर्वदा भगवान् के अनुकूल आचरण रखना है और भगवान्के प्रतिकूल कभी नहीं जाना है। भगवान् की प्रतिज्ञा है कि—

'यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां हि विस्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमांगतिम् ।।'
(वाराह पुराण)

'मरने के समय वायु या सन्निपात के प्रकोप या बेहोशी की अवस्थामें प्रपन्न मुझे भूल भी जाय, पर मैं उसे याद रखता हूँ और उसे परमपद ले आता हूं।'

प्रपत्ति श्री वैष्णवों का मुख्य साधन है।

गताङ्क से आगे----

ब्रह्मसूत्रकार बादरायण का महाभारतकार वेदव्यास कृष्णद्वैपायन से अभिन्नत्व

लेखक—आचार्य श्रीगुरुचरण मिश्र, शंकरपुर, रोहतास (बिहार)

वैदिककाल की अवधि उसी क्षण समाप्त हो गयी जिस क्षण यह कहा गया कि 'सिन्ध घाटी की सभ्यता ही वैदिक काल की सभ्यता है। उसी समय वेदों की रचना हुई। आर्य विदेशी थे। यहाँ के मूल निवासी आदिवासी थे। जो असभ्य थे। यदि इस विन्दु पर विचार करने लगें, तो बाढे कथा पार नहीं पावौं। इस विषय का एक छोटा सा निबन्ध 'आर्य भारत वर्ष के मूल निवासी थे।' शीर्षक इस अनन्त सन्देश के पहले वर्षों – ""में छप चुका है।

अतः यह मानना होगा कि 'श्रुतयश्चभिन्नाः स्मृतयश्च भिन्ना नैकोमुनिर्यस्यवचः प्रमाणम्। धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाँ महाजनो येन गतः स पन्थाः।'

आप विष्णुपुराण को व्यास रचित और पराशरमुनि कथित मानते हैं। उसके विरुद्ध वेदों के निर्माण में पौर्वापर्य का विभाग कर समय का भी पौर्यापर्य सिद्ध करना चाहते है। जिसमें कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। न कोई वेदवाक्य एवं ऋषि वाक्य है। यहां विष्णु पुराण का अंश ३ अध्याय ४ का प्रसंग अवलोकनीय है।

पराशर मुनि ने कहा है—सृष्टि के आदि में ईश्वर से आविर्भूत ऋक् यजुः आदि चार चार पादों से युक्त एक लक्षमन्त्र वाला वेद था। उसी से समस्त कामनाओं को देने वाले अग्नि होत्रादि दश प्रकार के यज्ञों का प्रचार हुआ। तदनन्तर अठ्ठाइसवे द्वापर युग में मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन ने इस चतुष्पाद युक्त एक हीं वेद के चार भाग किये। परम बुद्धिमान् वेदव्यास ने उसका जिस प्रकार विभाग किया है, ठीक उसी प्रकार अन्यान्य व्यासो ने तथा मैंने भी पहले किया था। अतः हे द्विज समस्त चतुर्युगों में इन्ही शाखा भेदों से वेद का पाठ होता है। भगवान् कृष्णद्वैपायन को तुम साक्षात् नारायण हीं समझो। क्योंकि हे मैत्रेय! नारायण के अतिरिक्त कौन महाभारत का रचयिता हो सकता है।

विष्णुपुराण अंश ३ अध्याय ४ श्रीपराशर उवाच—

आदौ वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्र सम्मितः।
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽहं सर्वकामधुक् ॥१॥
ततोऽत्र मत्सुतो व्यासो अष्टाविंशतिमेऽन्तरे।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः ॥२॥

यथा च तेन वै व्यस्ता वेदव्यासेन धीमता ।
वेदास्तथा समस्तैस्तै र्व्यस्ताव्यस्तैस्तथामया ॥३॥
तदनेनैव वेदानां शाखाभेदान् द्विजोत्तम ।
चतुर्युगेषु पठितान् समस्तेष्ववधारय ॥४॥
कृष्णद्वैपायनं विद्धि व्यासं नारायणं प्रभुम् ।
कोह्यन्यो भुवि मैत्रेय ! महाभारतकृद् भवेत् ॥५॥

पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं—कि सृष्टिकाल में ऋक् यजुः साम अथर्व इन पादों से विशिष्ट वेद था । अट्ठाइसवें द्वापर में कृष्णाद्वैपायन वेदव्यास ने वेद के एक एक पाद को एक एक शिष्टा क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु को पढाया ।

इस द्वापर में तो वैशम्पायन का शिष्य यागवल्क्य तीसरी पीढी में चले गये । सृष्ट्यादि से सत्ताइसवें द्वापरकाल में मन्त्रों को वेदव्यास ने त्रिकाल दर्शिता शक्ति से साक्षात्कार किया । तो भविष्य को साक्षात्कार करनेमें अर्वाचीमों ने रोक क्यों लगा दी । यागवल्क्य की संहिता या उपनिषद् उन अन्तरों में थी कि नहीं ? उन युगों में उपनिषदों का निर्माण नहीं हुआ था क्या ? जो उपनिषद् काल को निश्चित करते हैं तो वेदव्यास के जीवन के अन्तकाल का भी निश्चय उन्हीं को करना होगा । हमने तो उन्हें भगवान् और चिरञ्जीवी मान लिया है । 'अश्वत्थामा वलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः । क्रपः परशुरामश्च सप्ततेचिरजीविनः । ·········· मार्कण्डेयस्तथाष्टमः ।'

वेदव्यास दूसरे के हृदय के भावों को अन्तर्यामित्व शक्ति से जान लेते थे । यागवल्क्य एवं भावी शंकाओं का प्रश्न उठाकर उसका निराकरण करना कोई आश्चर्य नहीं है । देखें विष्णुपुराण अंश ६ अध्याय २ को—

ऋषिगण कलियुग, शूद्र और स्त्री के उद्धार एवं श्रेष्ठता की जिज्ञासा लिये वेदव्यास के समीप गये, उस समय वे स्नान करते थे । ये वृक्षच्छाया में हृदय में अपने प्रश्न लिये बैठे ही थे कि स्नान में डुबकी के अन्तर से उनके हृदयगत प्रश्नों के उत्तर वहीं से दे दिये । कलिः साधुः । शूद्रः-साधुः । स्त्री साध्वीः । पुनः ऋषियोंके पास आकर कहा मैंने अपने दिव्यचक्षु से जान कर आपके प्रश्नों का उत्तर स्नान करते ही दे दिया है ।

पराशर उवाच—

ततः प्रहस्य तानाह कृष्णाद्वैपायनो मुनिः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनांस्तापसांस्तानुपागतान् ।
मयैष भवतां प्रश्नो ज्ञातो दिव्येन चक्षुषा ।
ततो वः प्रसंगेन साधुसाध्विति भाषितम् ॥

(वि० ६-२-३२-३३)

उपर्युक्त सन्दर्भ से यह तर्क भी परास्त हो गया कि पराशर तक हीं वेद मन्त्र अस्तित्व में आये थे । जब वेदव्यास के समय में वेदमन्त्रों का अस्तित्व ही नहीं था, तो वेद के चारो पादों को चार शिष्यों को पढाया कहाँ से ?

वेद मन्त्रों के निर्माण का निश्चित समय देना होगा। इसके लिये अर्वाचीन ही सक्षम समझे जाते है। हमने तो उन्हें अनादि अपौरुषेय और ईश्वर निःश्वास मान लिया है।

विपक्ष का तर्क—सूत्रकार बादरायण ने निरीश्वर सांख्यदर्शन का निराकरण - ब्रह्मसूत्र (१-२-२६) (१-३-१२) (१-४-११ से १-४-१६) आदि में किया है। जो यागवल्क्य के बहुत बाद सूत्रकार की स्थिति में आया है। यह वेद व्यास के लिए असंभव है।

इसका उत्तर अनन्तसन्देश के वर्ष १८ अंक १० में दिया जा चुका है।

आप का कहना है—निरीश्वर सांख्यदर्शन ने उपनिषद् के अस्तित्व में आते ही स्वानुकूल लगा लिया होगा। यह संभावना वाक्य प्रयोक्ता को ही अपनी बात पर दृढ़ता से वञ्चित कर देता है। सांख्ययोग कपिलमुनि का सिद्धान्त है। कर्दम ऋषि के पुत्र कपिलमुनि ने अपनी माता से सांख्य शास्त्र का उपदेश किया है। कपिल भगवदवतार थे 'कर्दमेन प्रजाभूता' यह श्रुति वेद की है, या आपके मतानुसार बहुत दिनों के बाद (जिसका कोई निर्देशनहीं) बनी हुई उपनिषद् की है।

कपिलमुनि वेदव्यास के अनवधिक पूर्वसृष्टयादिकाल में हुए थे। क्योंकि कर्दम ऋषि की पुत्री अरुन्धती का विवाह ब्रह्मपुत्र वशिष्ट से हुआ था। त्रेता में सगरपुत्रों को कपिलमुनि ने भस्य किया था। जिसके लिये गंगा लायी गयी थी। द्वापर के अन्त में वेदव्यास का अवतार हुआ। जिसकी चौथी पीढी में वेदव्यास हैं। व्यासंवशिष्ठ नप्तारं शुकतातं तपोनिधिम्। यह वाक्य है। अतः वेदव्यास से पूर्ववर्त्ती कपिलमुनि थे।

जब सांख्य शास्त्र ने उपनिषदों को अपने अनुकूल लगा दिया इससे सिद्ध होता है कि आपके मत से सांख्यकालीन हीं उपनिषदें हैं। तो पौर्यापर्य कहां।

कपिलमुनि ने प्रधान नामक तत्व को प्रकृति कहा है।

यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्॥

(भाग० ३-२६-१०)

उसी के शब्द भेद किये। पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रायें चार अन्तःकरण, और १० इन्द्रियां।

पञ्चभिः पञ्चभिः ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा।
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्रधानिकं विदुः॥

(भा० ३-२६-११)

वाद में सांख्य सिद्धान्त में चाहे जितने परिवर्तन हुए हों, ब्रह्मसूत्र में कपिलोक्ति का ही निराकरण करना था।

अक्षर शब्दार्थ के प्रसंग में—'अक्षरमम्बरान्तधृतेः' (ब्र० सू० १-३-१०) 'साचप्रशासनात्' (ब्र० १-३-११) में अक्षर ब्रह्म से अम्बरान्त का प्रशासन बतलाया गया। 'अन्य भाव व्यावृत्तेश्च' (ब्र० १-३-१२) में प्रधान जो कपिलमत से प्रकृति है, उसका निराकरण किया गया। अक्षर शब्द विनाशशील जड़ प्रकृति का वाचक नहीं हो सकता। परब्रह्म का वाचक है। 'अन्यभावः=अन्यत्वम् प्रधानादिभावः।' 'अस्याक्षरस्य परमपुरुषादन्यत्वं वाक्यशेषे व्यावर्त्यते' (श्रीभाष्य)।

यहां मूल सूत्र में किसी मत या वाद का नाम नहीं है। व्याख्याकार अन्यत्व शब्द का प्रधान (प्रकृति) या पञ्चमहाभूत कुछ भी भाव लेकर व्याख्या कर सकते हैं।

पुनः 'ईक्षति कर्मव्यपदेशात् सः' (ब्र० १-३-१३) में ओम् इस अक्षर का वाच्य परमात्मा हैं, यह अर्थ हुआ। यहां भी मत या बाद का नाम नहीं है। ईक्षति कर्मव्यपदेशात्=यहां परम पुरुष को ईक्षते क्रिया का कर्म बताये जाने के कारण, सः=वह परमेश्वर हीं (त्रिमात्र सम्पन्न ओम्) इस अक्षर के द्वारा चिन्तन करने योग्य बताया गया है।

व्याख्या—इस सूत्र में जिस मन्त्र पर विचार चल रहा है वह इस प्रकार है—'यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचाविनिर्मुच्यत एवं हवै स पाप्मनाविनिर्मुक्तः स सामभि रुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते' (प्र० उ० ५।५)अर्थात् जो तीन मात्राओं वाले ओम् रूप इस अक्षरके द्वारा ही इस परमपुरुष का निरन्तर ध्यान करता है, वह तेजोमय सूर्यलोक में जाता है। तथा जिस प्रकार सर्प केंचुली से अलग हो जाता है; ठीक उसी तरह वह पापो से सर्वथा मुक्त हो जाता है। इसके बाद वह साम वेद की श्रुतियों द्वारा ऊपर ब्रह्मलोक में ले जाया जाता है। वह इस जीव समुदाय रूप परतत्व से अत्यन्त श्रेष्ठ अन्तर्यामी परमपुरुष पुरुषोत्तम को साक्षात् कर लेता है।

इस मन्त्र में जिसको तीनो मात्राओं से सम्पन्न ॐ कार के द्वारा ध्येय बतलाया गया है, वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही हैं। अपर ब्रह्म नहीं। क्यों कि उस ध्येय को जीव समुदाय के नाम से वर्णित हिरण्यगर्भ रूप अपर ब्रह्म से अत्यन्त श्रेष्ठ बताकर ईक्षते क्रिया का कर्म बतलाया गया है।

यहां कही सांख्य शब्द नहीं आया है। तो स्वानुकूल कैसे लगाया गया।

ब्रह्मसूत्र १-४-११ से १ ४-१३ तक का प्रसंग देखें—जिनको वेदव्यास के लिये नितान्त असंभव का तर्क दिया गया है—"न संख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च (१-४-११) संख्योपसंग्रहात् (श्रुति में) संख्याका ग्रहण होने से, अपि=भी न=अन्यत्र तत्वों की गणना नहीं है। नाना भावात्= क्यों कि वह संख्या दूसरे अनेक भाव व्यक्त करने वाली है। च=तथा, अतिरेकात्=(वहाँ) उससे अधिक का भी वर्णन है।

व्याखला-बृहदारण्योपनिषद् में कहा गया है कि—

यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम् ॥

(४-४-१७)

जिसमें पांच पञ्चजन और आकाश भी प्रतिष्ठित है, उसी आत्मा को मृत्यु से रहित मैं विद्वान् अमृतस्वरूप ब्रह्म मानता हूं।' इस मन्त्र में जो संख्या वाचक पञ्चपञ्च शब्द आये हैं, इनको लेकर पच्चीस तत्वों की कल्पना करना उचित नहीं है। क्योंकि यहाँ ये संख्यावाचक शब्द दूसरे-दूसरे भाव को व्यक्त करने वाले हैं। इसके सिवा पञ्चपञ्च से पच्चीस संख्या मानने पर भी उक्त मन्त्र में वर्णित आकाश और आत्माको लेकर सत्ताईस तत्व होते हैं जो सांख्य मतकी निश्चित संख्यासे अधिक हो जाते हैं। अतः यही मानना ठीक है कि वेद में न तो सांख्य सम्मत प्रधान का वर्णन है और न पच्चीस तत्वों का ही जिस प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में 'अजा' शब्द से उस परब्रह्म परमेश्वर की अनादि शक्ति का वर्णन किया गया है।

(क्रमशः)

चारों धामों से निराला 'ब्रज' धाम

लेखक—पूरनसिंह, (शोध छात्र) चौमुहा

मंदिरों में बजने वाले ढोल, मजीरे, नगाड़ों और शहनाई के सुरों में वहाँ से उठने वाली 'धूल और धूपबत्तियों की खुशबू में और वहाँ बँटने वाले प्रसाद की मिठास में आज भी ऐसी जबरदस्त कशिश है कि साल दर साल तीर्थ यात्री और पर्यटक इन मन्दिरों की ओर खिंचे ही चले आते हैं। सभी देश-विदेश से आये भक्तगण ब्रज रस में डूब जाते हैं। बार-बार उनका मन श्रीराधाकृष्ण रूपी प्रेम भक्ति के सागर में गोता लगाने के लिए उतावला हो जाता है।

आज भी मथुरा, वृन्दाबन, गोवर्धन, बरसाना, नन्दगांव की गली गली, वृक्षों की डार डार, पात-पात तथा जर्जर मन्दिरों की एक-एक ईंट उस बीते युग की कहानी सुनाते हैं, जहाँ सदैव प्रेम प्यार व भक्ति की सरिता अनवरत बहती थी।

भगवान श्रीकृष्ण के आविर्भाव के उपरान्त उनके किये गये गोसंवर्धन आदि प्रयासों से निर्मित गौ प्रधान ब्रज संस्कृति को विशिष्ट गरिमा प्राप्त हुई है। जिसमें ब्रज शब्द को धार्मिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक महत्व प्राप्त हुआ। आज श्रीकृष्ण की ब्रज सम्बन्धी लीलायें अपने रहस्यमय दार्शनिक, आध्यात्मिक, अर्थों में सर्वव्याप्त है और चौरासी कोस के घेरे में यमुना के आस-पास का क्षेत्र ब्रज क्षेत्र कहलाया। अगर इतिहास रूपी दर्पण में झाँक कर देखे तो मथुरा और वृन्दावन के आस-पास का क्षेत्र जहाँ श्रीकृष्ण ने गोचारण किया और अपनी अनेक रहस्यमयी लीलायें कीं वही ब्रज क्षेत्र है।

जो आज की आध्यात्मिक, धार्मिक दृष्टि से मथुरा के आस पास के चौरासी कोस के क्षेत्र को ही ब्रज माना जाता है और भक्तगण व तीर्थ यात्री धार्मिक भावना संजोये दिन रोज इसी भूमि की परिक्रमा करते हैं। यहाँ की आध्यात्मिक एवं धार्मिक भक्ति ने सदैव साधु सन्तों को अपनी ओर आकर्षित किया है। मायावी और भौतिक जीवन में भटककर सच्चे आनन्द की खोज में ब्रज पधारे, जहाँ उन्हें सदैव दिव्य शान्ति की अनुभूति हुई तथा उस दिव्य शान्ति की शक्ति को अपने शब्दों द्वारा लोक कथाओं एवं कविताओं में बद्ध किया।

ब्रज संस्कृति की मिठास से कौन अछूता रहा है सभी ने ब्रज की गली-गली कुंजों, बिहारों से ब्रज संस्कृति की मिठास का रसपान किया है। तभी तो ब्रज संस्कृति में वह मिठास एवं शान्ति है जो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के 'प्रेम' आँसुओं से पली है। आज ऐसा लगता है—कि श्रीकृष्ण-राधा के आंचल से 'प्रेम' रस झलक गया है और पूरा विश्व उसे समेटने के लिए दौड़ रहा है।

भारत में ही नहीं विश्व में ब्रज भक्ति का केन्द्र रहा है। भक्ति के चरमोत्कर्ष में भक्ति, भक्त और भगवान् अभेद हो जाते हैं, इसलिए ब्रज में अब भी साधु-सन्त अथवा भक्त ऐसे हैं जो ब्रज की हर वस्तु में भगवान श्रीकृष्ण और श्रीराधा के दर्शन करते हैं। यह एक दिव्यानुभूति है, जो आज भी देश-विदेश से आने वाले लोग ब्रज की ओर आकर्षित हो जाते है और ब्रज में आकर शान्ति की अनुभूति करते हैं। सारा जगत यहाँ की भक्ति से आल्हादित है। आज भी हरे कृष्ण सम्प्रदाय

विपरीत परिस्थितियों व पीड़ाओं को सहन कर पूरे विश्व में पैदल चलकर भक्ति का प्रचार प्रसार कर रही है। विदेशों में रहने वाले लोगों के पास अत्याधुनिक सुख, सुविधायें विपुल धन अर्थात् माया और भौतिक आनन्द उपलब्ध है लेकिन शान्ति नहीं, चैन नहीं, वे आज शान्ति के लिए मुँह ताकते हुए इधर-उधर भटक रहे हैं। भटके हुए ऐसे संसारी पुरुष समय-समय पर प्रभु कृपा से दिव्य भक्तों के सम्पर्क में आये शान्ति और कल्याण के लिए श्रीकृष्ण के भक्त हुए।

ब्रज संस्कृति, ब्रज लोक कला, ब्रजलोक साहित्य अपने अनेक रूपों में ग्राम्यांचलों में बिखरा पड़ा है। अतः ब्रज संस्कृति कला व साहित्य स्वयं भगवान श्रीकृष्ण और राधिका का जीवन दर्शन है। खेल-खेल में भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रज ग्वालों व ब्रज बालाओं को अद्वितीय प्रेम-प्यार व स्नेह का पाठ पढ़ाया जो पाठ आज भी ब्रज क्षेत्र में व्याप्त है। ब्रज वह प्रेम भक्ति, करुणा तथा दया का विराट स्वरूप है जिसे स्वयं श्रीराधाकृष्ण ने लोकरंजन के रूप में आभारित किया। अतः जहाँ जीवन में 'आनन्द' और प्रेम का रस घोला है वही भारतीय साहित्य को अद्वितीय अमर विषय सामग्री प्रदान की है। अगर हम भारतीय साहित्य से ब्रजसाहित्य को निकाल दें तो भारतीय साहित्य निर्बल ही नहीं बल्कि लंगड़ा हो जायेगा। अतः भारतीय साहित्य का भाव पक्ष तो श्रीराधा-कृष्ण के युगल-संयोग व विरह का आधार है। क्योंकि ब्रजसाहित्य में अद्वितीय माधुर्य, करुणा, दया और प्रेम-प्यार का संगम है। अतः ब्रजसाहित्य ने भारतीय मानस को ही आनन्दित नहीं किया विश्व के हृदयों को भी रसानन्दित किया है।

न जाने क्यों वर्तमानतः ब्रज की गलियों, पगडण्डी, वृक्ष, लतायें सूनी-सूनी एवं झुलस-सी रही हैं। यमुना का स्वच्छ जल विषाक्त-सा होता जा रहा है। और चहुं ओर भयावह वातावरण-सा पनपता जा रहा है। कहीं स्वार्थ, कहीं आत्मघात, कहीं पीड़ा, कहीं दर्द के दिनरोज अंकुर फूट रहे हैं। लेकिन पूर्व ब्रज क्षेत्र उस भव्य विराट रूपी प्रेम का द्वार रहा। जिसने सदैव अपने हृदय पट खोलकर सभी को प्रेम-भाई चारे के मार्ग पर चलना सिखाया। एक नास्तिक भी ब्रज आया वह श्रीकृष्ण भक्ति का होकर ही गया। ब्रज प्रेम-प्यार का ही स्रोत नहीं अन्याय पर न्याय, बुराई पर भलाई की विजय का प्रतीक रहा है। जहाँ संयोग की महकती खिली फुलवाड़ी है वही विरह की सूखी क्यारी भी, फिर भी आशा के आंसुओं से निराशा को सींचा है तत्पश्चात 'आशा' के खिले फूल ही मिले हैं।

ऐसा लगता है आज ब्रजवासी ही नहीं पूरा भारत व पूरा विश्व श्रीराधा-कृष्ण के विछोह में रो रहा है और दिन-रोज भजन, कीर्तन, कथा व रास लीलाओं में श्रीराधाकृष्ण के मिलन के लिए उन्मादित हो रहे हैं। फिर भी कुछ स्वार्थी लोग, माया व भौतिक सुख का चोला ओढ़े भक्त और भक्ति को मात्र कोरा ढोंग कहकर अपनी नास्तिकदा एवं मूर्खता का सहज ही परिचय देते हैं। उन्हें क्या पता श्रीकृष्ण-राधा का युगल दर्शन करना यह ब्रज के लोगों का आन्तरिक दिव्य स्वरूप है। अतः ब्रज प्रेम-भक्ति का उद्गम स्थल है, जो भक्ति दिव्यानन्द, निर्विकार, विशुद्ध और सर्व-कल्याणी है। अतः बाहर से आने वाले मुमुक्षुओं भक्तों एवं यात्रियों को यहाँ के आन्तरिक विशुद्ध प्रेम-भक्ति को देखने का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि दिव्य पुरुष डाल-डाल, पात-पात में श्रीराधा-कृष्ण के दर्शन करते हैं। इसीलिए आज भी यहाँ के लोग सांस्कृतिक मूल्यों, विश्वासों, आस्थाओं और विभिन्न परम्पराओं को अपने व्यवहार में संजोये हुए है। तभी तो ब्रजधाम चारों धामों से निराला है।

❖

रामचरित मानस : मानवता का महान ग्रन्थ

—श्री योगेश्वर प्र० सिंह 'योगेश'
एम० ए०, डिप० एड०, विद्यावाचस्पति

विश्व में रामचरितमानस ऐसा महान् ग्रन्थ है, जहाँ मानवता का अमूल्य सन्देश मिलता है। कुछ लोग तुलसीदास पर ब्राह्मणों के पक्षपात का आरोप लगाते हैं। किन्तु उनकी रचना में ब्राह्मणों का जातिगत पक्षपात नहीं है जिस ग्रन्थ में रावण जैसा ब्राह्मण राम के हाथों मारा जाता है, परशुराम जैसा ब्राह्मण एक क्षत्रिय राजकुमार से क्षमा याचना करता है—

अनुचित बहुत कहेउ अज्ञाता। छमहू छमा मन्दिर दोऊ भ्राता॥

जिस ग्रन्थ में काग (शूद्र) राम कथा कहता हो और गरुड़ तथा हंस कथा सुनते हों, उस ग्रन्थ में ब्राह्मण का पक्षपात होना ठीक नहीं जँचता है। भरत के आगे वशिष्ठ जैसे ज्ञानी की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है।

भरत अगम महिमा जलरासी। मुनि मत तीर ठाढ़ अबला-सी।
गा चह पार जतन हिय हेरा। पावत नाव न, बोहित बेरा॥
(रा० च० मा०)

उस ग्रन्थ पर ब्राह्मण का पक्षपात दोष अनुचित है। जिसका रचनाकार अपने विषय में कहता है कि—

'धूत कहो, अवधूत कहो, रजपूत कहो, जुलहा कहो कोई'। जो कवि अपने गोत्र का परिचय यह कह करके देता है।

'साई के गोत, गोत होत है जुलाहे को'

उस पर ब्राह्मण के पक्षपात का आरोप निराधार है।

कुछ लोग कहते हैं कि तुलसीदास अकबर के समकालीन थे। वे मुसलमान के विरोधी थे। यह भी भ्रामक है। कवि तो सहर्ष स्वीकार करता है कि—

'माँगि के खइवो मजिद में सोइवो'

यही नहीं वह तो यवन को भी भक्ति का अधिकारी मानता है।

स्वपच, खबर, खस, जवन, जड़ पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

इससे स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास यवनों के भी विरोधी नहीं थे। और यवन कवि रहीम खानखाना ने भी इसे स्वीकार किया है।

रामचरितमानस विमल, संतन जीवन प्रान।
हिन्दु आन कहें वेद सम, जवनहिं प्रगट कुरान॥

एक आक्षेप यह भी है कि तुलसीदास शूद्रों के विरोधी थे। लेकिन कहने वाले को यह नहीं सूझता कि जिस मानस के चार वक्ताओं में एक वक्ता कागभुशुण्डी पक्षियों में शूद्र ही है। जिस ग्रन्थ का चरित्र नायक शबरी का अतिशय सहर्ष स्वीकार करता हो, जिस ग्रन्थ में निषादराज जैसे अछूत से महामुनि वशिष्ठ गले-गले मिलते हैं—

राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥
(रा० च० मा०)

उस ग्रन्थ में शूद्र का विरोध कैसे हो सकता है। भगवान् राम इतने उदार थे कि आदि-वासियों को भी उन्मुक्त स्नेह और प्यार प्रदान करते हैं।

वेद बचन मुनिमन अगम, ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन के सुनत, जिमि पितु बालक बयन ॥

नारी के प्रति घृणा का आरोप भी निर्मूल है। रामचरितमानस की रचना ही एक नारी की जिज्ञासा की शान्ति के लिये हुई। रामचरितमानस में प्रथम वन्दना भी नारी की ही हुई।

'वन्दे वाणीविनायकौ' 'भवानीशंकरौ वन्दे'।

सीता के वाद ही राम की वन्दना हुई तो फिर नारी के प्रति घृणा कहाँ, श्रद्धा और पूजा का ही भाव सर्वत्र है।

वास्तविकता तो यह है कि रामचरितमानस मानवता का ग्रन्थ है। जिसका चरित्र नायक शत्रु को स्नेह देता है। शत्रु को भी अपना धाम देता हैं। जिस रावण ने राम की स्त्री का अपहरण किया, वही राम उसकी मंगल कामना करते हैं—

काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करब बतकही सोई ॥
(रा० च० मा०)

इतना ही नहीं बैरी भी राम की बड़ाई करते हैं।

'बैरिहूं राम बड़ाई करही।' 'जासु सुभाव अरिहि अनुकूला'
'निसिचर निकर मलायतन, ताहि दीन्ह निज धाम'

और शत्रु भी राम के इस स्वभाव से परिचित थे। खरदूषण तो प्रतिशोध की भावना से सेनाओं के साथ युद्ध भूमि में राम के आमने सामने था किन्तु राम पर वाण नहीं चलाता है, वह कहता है—

यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरुपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

राम का चरित्र ही मानवता का आदर्श है, विश्व के इतिहास में ऐसा महान व्यक्तित्व अन्यत्र दुर्लभ है। राम का पशुपक्षियों से प्रेम कितनी उदारता का परिचायक है,

'नर की मत पूछो बात सखे, पशु पक्षी तेरे दास बने।
तुम एक राम, लेकिन तुम पर कितने जग में इतिहास बने ॥

रामचरितमानस वह प्रकाश-स्तंम्भ है जहाँ संसार से भटके लोगों को, मानवता के आदर्श से च्युत व्यक्तियों को सतत् प्रकाश मिलता रहता है, उनका मार्गदर्शन होता होता रहता है।

समाचार-स्तम्भ

श्रीरङ्गनाथ मन्दिर वृन्दावन में धनुर्मासोत्सव सम्पन्न

श्रीरङ्गमन्दिर वृन्दावन में श्रीगोदाम्माकृत श्रीधनुर्मासोत्सव का एक मासीय अनुष्ठान श्रीगोदादेवी के विवाहोत्सव जिसमें श्रीविष्णुचित्त स्वामी ने वैदिकविधि से अपनी आत्मजा श्रीगोदा का कन्यादान श्रीरङ्गनाथ भगवान के करकमलों में समर्पित किया सम्पन्न हो गया।

ट्रस्ट के इस देवालय में विद्युत् का प्रबन्ध श्रीवैष्णवों ने सराहा। प्रातः ५ बजे प्रकाश होने से सभी को सुविधा हुई।

श्रीतोताद्रि में महातैलाभिषेक

अष्टभूवैकुण्ठों में अन्यतम श्रीतोताद्रिनगर (दक्षिण) में विराजमान श्रीतोताद्रिनाथ भगवान् का ६ वर्ष में होने वाले महातैलाभिषेक,सहस्रशंखाभिषेक, गरुडोत्सव और लक्षदीपोत्सव आदि विशेष तदीयाराधन के साथ दि० १३-२-९१ को महाशान्ति प्रातः ७ बजे विश्वरूपदर्शन, होम, कुम्भाभिषेक, तीर्थगोष्ठी। रात्रि ६ बजे दीपदान, श्रीवरमंगासमेत श्रीदेवनायक भगवान की सवारी श्रीबलिमण्डप की परिक्रमा दि० १४-२-९१, इसके बाद दि० १५-२-९१ को पुष्पयाग या द्वादशाराधन, परिक्रमा के साथ उत्सव की समाप्ति होगी।

यह महोत्सव भक्तगणों की सहायता से होने वाला है। सभी भक्त पधारकर दर्शनों का लाभ प्राप्त करें।

विनीत—
लक्षदीप कमैटी, श्रीतोताद्रि

तिरुपति (आन्ध्र) में श्रीगीता जयन्ती सम्पन्न

तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश) में ए. आई. सी. पी. एस. ई. के समायोजन में दि० १६-११-९० को 'श्रीगीता-जयन्ती' का उद्घाटन रा. संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति एन. एस. आर. श्रीमान् ताताचार्यजी द्वारा किया गया। इस समरोह में अनेक स्कूलों के बच्चों ने भाग लिया। उन बच्चों को पुरस्कार वितरण विश्वाचार्य श्रीस्वामी अनिरुद्धाचार्य महाराज, (चांदोद) के करकमलों से प्रदान कराया गया। इस समारोह में श्रीमान् सी. अन्नाराव महोदय मुख्य अतिथि थे।

एक समारोह आगामी गर्मियों में दिल्ली में आयोजित किया जायगा। जिसमें स्कूली बच्चे 'नीति श्लोकों' की प्रतियोगिता में भाग लेंगे।

प्रेषक—
प्रो० श्रीरामसजीवन त्रिपाठी 'बटोही'

मन्दिर श्रीमुरली मनोहर जयपुर में श्रीआण्डाल कल्याणोत्सव

जयपुर, गंगापोल बाहार, रामानुजमार्ग स्थिति मन्दिर श्रीमुरलीमनोहर जी में श्रीआण्डाल कल्याणोत्सव अर्थात् श्रीगोदाम्बाजीका विवाहोत्सव दि० १३-१-९१ रविवार को श्रीस्वामी राघवेन्द्राचार्यजी के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ।

विनीत—
श्रीवेंकटेश सेवासमिति, जयपुर

सरौती में विराट् ज्ञानयज्ञ समारोह

सरौती (जहानाबाद) में अनन्त श्रीविभूषित श्रीस्वामी परांकुशाचार्यजी महाराज की प्रतिमा प्रतिष्ठा, दिव्य जयन्ती तथा विराट् ज्ञान-यज्ञ समारोह श्रीवेंकटेश मन्दिर सरौती में श्रीस्वामी रङ्ग-रामानुजाचार्यजी के तत्वावधान में दि० १९-२-९१ से २६-२-९१ तक विविध धार्मिक संस्कारों आयोजनों के साथ सम्पन्न होगा।

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की दिव्य परम्परानुसार सरौती स्थानाधीश्वर श्रीस्वामी परांकुशाचार्य जी महाराज सम्वत् १९२१ फाल्गुन शु० त्रयोदशी को इस धरा-धाम पर अवतरित हुये और शताधिक वर्षों तक श्रीवैष्णव सनातनधर्म का अपने उपदेशों, आचरणों, प्रकाशनों द्वारा प्रचार प्रसार करते रहे। उन्हीं की प्रतिमा-प्रतिष्ठा एवं जयन्ती के शुभ अवसर उक्त ज्ञान-यज्ञ समारोह आयोजित किया गया है। इसमें अनेक सन्त महात्मा विद्वान् पधारकर अपने उपदेशों से जनता को अनुगृही करेंगे।

अतः इस समारोह में आप महानुभावों की उपस्थित सादर प्रार्थनीय है। यज्ञ स्थल पटना औरंगावाद पथ पर बैदराबाद से तीन किलोमीटर दक्षिण पक्की सड़क पर स्थित है।

निवेदक—प्रतिमा प्रष्ठिठापक-समिति सदस्यगण, सरौती जि०जहानाबाद

हैदराबाद में श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ सप्ताह

हैदराबाद, महाराजगंज (आन्ध्र) स्थित श्रीवेणुगोपाल श्रीगोपाल इन्नाणी के आवास पर भगवत्कृपा स्वरूप श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ का आयोजन दि० १७-१-९१ से प्रारम्भ होकर दि० २३-१-९१ तक सम्पन्न होगा।

व्यासासन पर श्रीमदुत्तर तोताद्रि श्रीनागोरिया मठ डीडवानाके स्वामी श्रीमान् केशवाचार्य जी महाराज के उत्तराधिकारी श्रीश्रीनिवासाचार्यजी एम. ए. साहित्याचार्य विराजमान होकर सुमधुर कथामृत की वर्षा कर भक्त श्रोताओं को आप्लावित करेंगे। भक्तगण आनन्द लाभ करें यह विनति है। विनीत—वेणुगोपाल श्रीगोपाल इन्नाणी

इचलकरंजी में श्रीवाल्मीकीय रामायण प्रवचन सम्पन्न

श्रीसत्संग सेवा समिति, कापड़ मार्केट सांस्कृतिक भवन इचलकरंजी ४१६११५ (कोल्हापुर) में श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण का प्रवचन श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीस्वामी माधवाचार्य जी महाराज की अमृतमयी वाणी द्वारा दिनांक २१-१२-९० से २९-१२-९० तक और दि० २३-१२-९० से २७-१२-९० तक मुजफ्फर नगर वाले श्रीरामदरबार शर्मा बन्धुओं द्वारा श्रीरामचरित मानस का संगीतमय आयोजन उक्त सांस्कृतिक भवन में रात्रि में ८.३० से १०.३० तक सुसम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सत्संग प्रेमियों ने यथेच्छ आनन्द प्राप्त किया।

श्रीराधामाधव कुञ्ज में श्रीमद्भागवत सप्ताह

श्रीधामवृन्दावन, परिक्रमामार्ग रमणरेती स्थित श्रीराधामाधव कुञ्ज में श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ समारोह दि०२१-१-९१ से २८-१-९१ तक ब्रह्मर्षि पूज्यपाद श्रीदेवराहाबाबा महाराज के प्रियशिष्य श्रीरामसरोवरदासजी के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ।

व्यासपीठ पर आचार्य श्रीमहावीर प्रसादजी ने विराजकर भागवतकथामृत का पान कराया। भक्तों ने इस सुअवसर से लाभ लिया अन्तिम दिन विशाल भण्डारा हुआ और ब्राह्मणों को विदाई देकर आयोजन पूर्ण हुआ, समरोह में अनेक के भक्तों ने भाग लिया। —अशोकयादव. सुधन शर्मा

'श्रीहरिकथा' पत्रिका का सत्प्रयास सराहनीय

'श्रीहरिकथा' के सम्पादक श्रीसुरेन्द्रप्रसादजी अग्रवाल यह सूचित करते हैं कि वैकुण्ठवासी ब्रह्मर्षि पूज्यपाद श्रीदेवरहाबाबाजी महाराज विषयक 'श्रद्धाञ्जलि-अङ्क' आगामी जून ११ में निकालने का निश्चय किया गया है। इस अंक में बाबाजी महाराजके शिष्य प्रशिष्य, भक्त, प्रेमी, अनुगृहीतजन अपने लेख, कविता, संस्मरण, रचनाएँ तथा सामयिक कृतियाँ ५ मार्च १९९१ तक कृपया एस. पी. अग्रवाल, सम्पादक—'श्रीहरिकथा' बी–१२/२२३ लोधी कालोनी नई–दिल्ली–११०००३ (इण्डिया) इस पते पर प्रेषित कर सकते हैं। 'अनन्तसन्देश' कार्यालय के पते पर भेजने पर भी 'श्रीहरिकथा' कार्यालय भेज दिये जायेंगे।

—सम्पादक 'अनन्त-सन्देश'

छवड़ा नगर में मासिक श्रीमद्भागवत् प्रवचन

अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीबद्रीश की अर्चनारत उत्तराखण्ड श्रीवैष्णव मण्डल के अध्यक्ष एवं श्रीरामानुज कोट बद्रीनाथ धामके आचार्यचरण श्रीमहन्त स्वामी भृगुवंशाचार्यजी महाराज के पावन प्रवचन-भगवत-भागवत् चरित्रों का विवेचन करते हुये जनमानस को दि० ६।१२।९० से ५।१।९१ तक निरन्तर श्रीसत्यनारायणजी के मन्दिर में सम्पन्न हुये। भागवतों ने इस आयोजन में भाग लेकर आनन्द प्राप्त किया।

इसी प्रकार उक्त पूज्य स्वामीजीका श्रीमद्भगवत भागवतचरित्र साप्ताहिक ज्ञानयज्ञ मनोहर थाना में दि० २०।१।९१ से २८।१।९१ तक श्रीबालकिशन बाघला के निवास पर हुआ।

—गोपालाचार्य, छवड़ा

मौलासर श्रीसत्यनारायण मन्दिर में धनुर्मासोत्सव सम्पन्न

उक्त मन्दिर में प्रतिवर्षकी भाँति श्रीगोदाम्बाधनुर्मासोत्सव पौषकृष्णा १४ रविवार से प्रारंभ हुआ। जो मकर संक्रान्ति प्रवेश पर्यन्त तक मनाया गया। जिसदिन से धनराशी पर सूर्य का संक्रमण होता है, उसी दिन से श्रीगोदाम्बा का श्रीव्रतप्रारम्भ होकर एक मास तक अनुभव करने योग्य होता है। गोदाम्माजी का धनुर्मास व्रतोत्सव श्रीवैष्णवमात्र के लिये सर्वोपरि मान्य है। इनका परिचय इसी अङ्क में अन्यत्र देखें। श्रीसत्यनारायण मन्दिर मौलासर में श्रीगोदाम्माजी का तीस दिन तक नियमितरूप से पहले पासूर सेतीसवें पासूर तक कार्यक्रम प्रातः ४ बजे श्रीवेंकटेश भगवान का श्री सत्यनारायण भगवान मौलासर का सुप्रभात भगवान को जगाने के भजन संकीर्तन नित्याराधना के बाद भगवान की मंगला आरती ठीक ६ बजे तीर्थ गोष्ठी प्रसाद विविध व्यंजनों के साथ होती रहती थी।

इस वर्ष अत्यधिक भीषण शीतलहर के बावजूद भी साध्वी नारियों, बालबच्चों सहित भक्त मण्डली की उपस्थिति में कोई कमी नहीं आई। धनुर्मास उत्सव आनन्द पूर्वक सम्पन्न हुआ।

प्रेषक—

प्रेमपुजारी, मौलासर

मौलासर में श्री जी. डी. सोमानी की पुण्यतिथि समारोह

मौलासर (राज०) ८ जनवरी ६१ को श्री जी० डी० सोमानी पोलीटेक्नीक कालेज के प्रांगण में स्वनामधन्य, धर्मरत्न परमभागवत वै० वा० सेठ श्रीगजाधर सोमानीजी की १६ वीं पुण्य स्मृति में एक बृहद् आयोजन पूज्य श्रीचाँदमलजी शर्मा की अध्यक्षतामें आयोजित किया गया। जिसमें सोमानी ट्रस्ट सोसायटी हाईस्कूल कन्याशाला, गाँव के धनी मानीगण वैद्य, पुजारी उपस्थित थे। प्रथम पं० रामलालजी पुजारी के द्वारा वेदपाठ स्वस्तिवाचन तत्पश्चात् श्री जी० डी० सोमानी के चित्रपट पर पूजन माल्यार्पण प्रो० श्री पी.एन. माथुर ने किया। इसके बाद आगन्तुक ट्रस्ट मैनेजर श्रीसीताराम शर्मा, वासुदेवजी शर्मा, सन्तोषकुमार शर्मा, अशोककुमार अग्रवाल,प्रहलादजी गगगड़, वेंकटलाल गगड़, स्टाफ के अध्यापक छात्रों ने माल्यार्पण किया। सभासंचालक श्रीझुंझारसिंहजी के आदेश से ओम्प्रकाश चारण, श्रीविमल जैन, महेशकुमार,चैतन्य पारीक आदि के भाषण कविता पाठ यशोगान से हुआ।

श्रीप्रेमपुजारी ने कहा कि महाभागवत सेठ श्रीगजाधर सोमानी अपने परमपद वाले दिन बम्बई श्रीवेंकटेश देवस्थान में अनेक सन्त महान्त विद्वानों के मध्य श्रीमज्जगद्गुरु गादी श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज के स्वरूपानुरूप शताब्दी महोत्सव को देश व्यापी स्तर पर मनाने, उनके उपदेशों को आगामी पीढ़ी तक पहुंचाने का सत्संकल्प दोहरा कर और उसे कार्यान्वित करने का भार समागत सन्त, महान्तों, विद्वानोंको सोंपकर अपने आवास कपूर महल गये। वहाँ कपडे उतारते समय हृदयगति के अवरोध निमित्त से ८ जनवरी १६७३ को मध्याह्न के समय ऐहिकलीला संवरण कर वैकुण्ठधाम को पधार गये। चारों ओर शोक छा गया।

श्री जी. डी. सोमानी के हृदयावर्जक सद्गुणों के स्मरण मात्र से उनकी छवि, उनकी रहनि सब सामने आ जाती है। वे अपने वंश के दीप नक्षत्र थे। उनके कारण मौलासर प्रसिद्ध एवं गौरवान्वित हुआ। उनका मधुर स्वभाव, ओजस्वीवाणी,व्याख्यान पटुता, दया, क्षमा, परोपकार,भगवद्भागवतनिष्ठा, परधर्मसहिष्णुता, गो विप्रवेद शास्त्र में श्रद्धा, दानवीरता जन्मजात ही था। वे सबके प्रेम पात्र थे। प्रसन्नता की बात है कि आपकी सन्तान आपके पदचिह्नों पर चलने वाली है। ज्येष्ठ पुत्र श्रीसम्पतकुमारजी सोमानी अभीकार सेवा में अग्रेसर थे। उद्योग, समाजनीति में श्रीनन्दकुमार सोमानी रुचि लेते हैं। श्री के. के. सोमानी धार्मिक प्रवृत्ति के सेवाभावी हैं। श्रीसत्यनारायण भगवान् उन सबका सर्वविध मंगल करें।

तदुपरान्त ट्रस्ट के अधिकारी श्रीअशोककुमार अग्रवालजी ने सभा को सम्बोधित करते कहा कि सच्ची श्रद्धाञ्जलि तभी सार्थक मानी जायेगी जब हम सब परिश्रम के साथ सेठजी के पदचिह्नों का अनुगमन करें अन्त में श्री पी. एन. माथुर साहब ने सभी अध्यापक, छात्र, समागत सज्जनों को श्रीगजाधर सोमानीजी की शिक्षाप्रियता, दानपरायणता का स्मरण दिलाते हुये साभार धन्यवाद प्रस्तुत किया। दो मिनट के मौन से जी. डी. बाबू को श्रद्धाञ्जलि अर्पण के साथ सभा विसर्जित की गयी।

प्रेषक—

श्रीप्रेमपुजारी, मौलासर

धिकरण्यस्य ह्यैक्य एव तात्पर्यमिति सर्वसंमतम् । ननु च—सर्वपदानां लक्षणा न दृष्टचरी, ततः किम्, वाक्यतात्पर्याविरोधे सत्येकस्यापि न दृष्टा, समभिव्याहृतपदसमुदायस्यैतत्तात्पर्यमिति निश्चिते सति द्वयोस्त्रयाणां सर्वेषां वा तदविरोधायैकस्येव लक्षणा न दोषाय, तथा च शास्त्रज्ञैरभ्युपगम्यते—कार्यवाक्यार्थवादिभिर्लौकिकवाक्येषु सर्वेषां पदानां लक्षणा

शक्तिवृत्त्यपेक्षयापि तात्पर्यवृत्तिर्बलवती भवतीति तात्पर्यावृत्त्यनुरोधेन लक्ष्यणाश्रयणमपि भवत्येव अन्यथा क्वचिदपि लक्षणा न स्यात्, सामानाधिकरण्यस्य चैक्ये तात्पर्यमिति सर्वसंमतं तथा च 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' इत्यत्रापि सामानाधिकरण्येन बोध्यस्य ब्रह्मणः ऐक्ये प्राप्ते अद्वितीयत्वोक्तश्रुतिसाहाय्येन च ब्रह्मणि निर्विशेषे सिद्धे तत्र सत्यादिपदानां लक्षणाश्रयणं न दोषायेत्यर्थः।

ननु लक्षणा हि वाक्यगतैकपदस्य भवति यथा 'गङ्गायां घोषोस्ति' इत्यत्र गङ्गापदस्य सर्वेषां पदानां लक्षणा तु न दृष्टचरी—न पूर्वं क्वचिद् दृष्टा? इत्याशङ्कते—नन्विति। उत्तरमाह—तत इति, एकस्य पदस्य यथा गङ्गापदस्य। स्वाभिप्रायमाह—समभिव्याहृतेति, उच्चारितपदसमुदायस्येदं तात्पर्यमिति निश्चिते सति तस्य तात्पर्यस्य मुख्यार्थत्वाभावे च तत्प्रतिपादनार्थे तदविरोधाय= तात्पर्याविरोधार्थं यथैकस्य पदस्य लक्षणा न विरोधाय भवति तथा द्वयोः पदयोस्त्रयाणां वा पदानां सर्वेषामपि वा पदानां लक्षणा विरोधाय न भवति—अभिप्रेतार्थस्य येन केनापि प्रकारेण प्रतिपाद्य-

---

जाती) है, क्योंकि अभिधा शक्ति से अर्थ का ज्ञान संभव रहते लक्षणा करना अनुचित होता है—ऐसी शङ्का (मूल में) 'ननु' इत्यादि द्वारा करते हैं। 'नैष दोषः' से इसका उत्तर देते हैं—यह लक्षणा करना दोष नहीं है, इसमें हेतु कहते हैं—अभिधानेति,—शक्ति (=अभिधा वृत्ति) की अपेक्षा भी तात्पर्यवृत्ति बलवती होती है, तात्पर्यवृत्ति के अनुरोध से लक्षणा का भी आश्रयण होता ही है, अन्यथा कहीं भी लक्षणा न हो (सकेगी)। समानाधिकरण्य का ऐक्य में तात्पर्य होता है, यह सर्वसम्मत है, तथा च—'सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम्' यहाँ भी समानाधिकरण्य द्वारा बोध्य ब्रह्म का ऐक्य प्राप्त होने पर और अद्वितीयत्व कहने वाली श्रुति की सहायता से ब्रह्म में निर्विशेष (त्व) सिद्ध होने पर, वहाँ सत्य आदि पदों की लक्षणा स्वीकार करना दोष नहीं है।

कहो कि वाक्य में स्थित एक पद की ही लक्षणा होती है, जैसे 'गङ्गायाम् घोषः अस्ति' इस वाक्य में एकमात्र गंगापद की ही (तीर में) लक्षणा होती है, सभी पदों की लक्षणा तो पहले कहीं भी नहीं देखी गई है—ऐसी शङ्का मूल में नन्विति द्वारा की गई है और इसका उत्तर 'तत' इति द्वारा कहा गया है। एक पद की जैसे गंगा पद की (लक्षणा होती है), अपना अभिप्राय कहते हैं—समभिव्याहृतेति, उच्चारण किये गये पद समुदाय का 'यह तात्पर्य है' ऐसा निश्चय होने पर उस तात्पर्य के मुख्यार्थत्व का अभाव मानने पर उसके प्रतिपादनार्थ तात्पर्य के अविरोध हेतु जैसे एक पद की लक्षणा विरोध के लिए नहीं होती वैसे ही दो पद, तीन पद अथवा सभी पदों की लक्षणा भी विरुद्ध नहीं

समाश्रीयते, अपूर्वकार्य एव लिङादेर्मुख्यवृत्तत्वाल्लिङादिभिः क्रियाकार्यं लक्षणया प्रतिपाद्यते, कार्यान्वितस्वार्थाभिधायिनां चेतरेषां पदानामपूर्वकार्यान्वित एव मुख्योऽर्थ इति, क्रियाकार्यान्वितप्रतिपादनं लाक्षणिकमेव ।—अतो वाक्यतात्पर्याविरोधाय सर्वपदानां

त्वादित्यर्थः। उक्ते उदाहरणमाह—तथा चेति, तथा=सर्वपदानां लक्षणा। कैः शास्त्रज्ञैः सर्वपदानां लक्षणाश्रीयते? इत्यत्राह—कार्येति,कार्यमेव वाक्यार्थ इतिवादिभिः प्राभाकरैः,कार्यं च स्वर्गादिजनकमपूर्वम्। प्रभाकरमतेन सर्वपदलक्षणामुपपादयति–अपूर्वेति अपूर्व लक्षणकार्य एव लिङादीनां मुख्या=शक्तिर्वृत्तिरस्ति न पाकादिरूपकार्येपीति लिङादिभिर्लौकिकवाक्यगतैः क्रियाकार्यम्=पाकादिकार्यम् =पाकादिक्रिया लक्षणया प्रतिपाद्यते कार्यान्वितस्वार्थाभिधायिनामितरेषाम्=लिङाद्यतिरिक्तानां च स्वर्गघटादिपदानामपूर्वलक्षणकार्यान्वित एव मुख्यः=शक्योऽर्थोस्ति न तु पाकादिक्रिया कार्यान्वितोपीति लौकिकवाक्यघटितपदैः पाकादिक्रियाकार्यान्वित पदार्थः प्रतिपादनमपि लाक्षणिकमेवेति प्रभाकरमते लौकिकवाक्यघटकानां सर्वेषामपि पदानां लौकिकपदार्थेषु लक्षणैव स्वीकृतेत्यर्थः, प्राभाकरमते। 'घटमानय' इत्यादि वाक्यार्थज्ञानजन्यघटानयनादिव्यवहारेण बालस्यानयनादिविशिष्टे एव घटादौ घटादिपदानां शक्तिग्रहो जायते इति आनयनादि क्रिया कार्यान्वित एव घटादि-

---

होती—क्योंकि अभिप्रेत अर्थ जिस किसी भी प्रकार से प्रतिपाद्य होता है। इत्यर्थः। उक्त (विषय) में उदाहरण कहते हैं—तथा चेति, तथा=सभी पदों की लक्षणा। किन शास्त्रज्ञों द्वारा सभी पदों की लक्षणा स्वीकार की जाती है–इसका उत्तर कहते हैं–कार्येति, कार्य ही वाक्यार्थ है ऐसा कहने वाले प्राभाकर (मीमांसक) सभी पदों की लक्षणा कहते हैं। कार्य का तात्पर्य स्वर्ग आदि का जनक अपूर्व (अदृष्ट) है। प्रभाकर मतानुसार सभी पदों की लक्षणा का उपपादन करते हैं–अपूर्वेति, 'अपूर्व' रूप कार्य में ही लिङ् आदि की मुख्य शक्ति (=वृत्ति) है, न कि पाकादि रूप कार्य में भी उनकी शक्ति है। लौकिक वाक्य स्थित लिङ् आदि लकारों के द्वारा पाक आदि कार्य अर्थात् पाकादि क्रिया लक्षणा के द्वारा प्रतिपादित होती है, कार्यान्वित स्वार्थ का अभिधान करने वाले अन्य=लिङ् आदि से अतिरिक्त स्वर्ग, घट आदि पदों का अपूर्व नामक कार्यान्वित ही मुख्य (=शक्य) अर्थ है, न कि पाकादि क्रिया कार्यान्वित भी अर्थ है, इस प्रकार लौकिक वाक्य में स्थित पदों से पाक आदि क्रिया कार्यान्वित पदार्थ का प्रतिपादन लाक्षणिक ही है इस प्रभाकर मत में लौकिक वाक्यस्थ सभी पदों की लौकिक पदार्थों में लक्षणा ही स्वीकृत है–इत्यर्थः, 'प्रभाकर मत में 'घटम् आनय' इत्यादि वाक्य के अर्थ के ज्ञान से होने वाले घट के 'आनयन' आदि व्यवहार द्वारा बालक को आनयन आदि विशिष्ट घटादि में घट आदि पदों की शक्ति का ग्रह (=ज्ञान) होता है। इति। आनयनादि क्रिया का कार्यान्वित ही घटादि-घट आदि पदों का अर्थ होता है,' इस अभिप्राय

लक्षणापि न दोषः, अत इदमेवार्थजातं प्रतिपादयन्तो वेदान्ताः प्रमाणम्। प्रत्यक्षादिविरोधे च शास्त्रस्य बलीयस्त्वमुक्तम्, सति च विरोधे बलीयस्त्वं वक्तव्यं, विरोध एव न दृश्यते; निर्विशेषसन्मात्रब्रह्मग्राहित्वात्प्रत्यक्षस्य।

ननु च घटोस्ति पटोस्तीति नानाकारवस्तुविषयं प्रत्यक्षं कथमिव सन्मात्रग्राही-

---

घंटादिपदानामर्थ इत्यभिप्रायेण कार्यान्वितेत्युक्तम्। तत्रापि लौकिकवाक्येष्वप्रामाण्य शङ्कया वेदवाक्येषु च तदभावात् वेदानादित्वेन वैदिकपदार्था एव पदानां मुख्यार्था लौकिकपदार्थास्तु लाक्षणिकत्यादि सर्वं प्राभाकरग्रन्थेषु द्रष्टव्यं विस्तरभयान्नेहाधिकं प्रतन्यते। उपसंहरति—अत इति, वाक्यतात्पर्याऽविरोधाय=वाक्यतात्पर्यविरोधपरिहाराय। इदमेवार्थ जातम्=निर्विशेषब्रह्मानुकूला ब्रह्मणो निर्विशेषनानकूलं वार्थजातम्=असन्नेत्यादि। सगुणब्रह्मप्रतिपादनेन वेदान्तानां प्रामाण्यं न स्याद् मिथ्यार्थप्रतिपादकत्वापत्तेः—सविशेषस्य मिथ्यात्वात घटादिवत् शुक्तिरजतादिवच्च। अपच्छेदन्यायेन शास्त्रस्य प्रबलत्वमुक्तमित्याह—प्रत्यक्षेति। बलाबलविचारापेक्षैव नास्ति शास्त्रप्रत्यक्षयोः परस्पर विरोधाभावात् यथा शास्त्रेण सन्मात्रं प्रतिपाद्यते तथा प्रत्यक्षेणापि सन्मात्रमेव गृह्यते इति प्रत्युत सौहार्दमेवेत्याह—सतीति।

ननु प्रत्यक्षं न घटपटाद्यनेकपदार्थग्राहकं दृश्यते न तु सन्मात्रग्राहकं एकस्मिन्नपि घटादौ जाति-

---

से 'कार्यान्वितेति' कहा गया है। वहाँ भी लौकिक वाक्यों में अप्रामाण्य की शङ्का से और वेद के वाक्यों में अप्रामाण्य की शङ्का का अभाव होने से 'वैदिक पदार्थ' ही पदों के मुख्य अर्थ हैं लौकिक पदार्थ तो लाक्षणिक हैं—यह सब प्राभाकर ग्रन्थों में द्रष्टव्य हैं, विस्तार के भय से यहाँ अधिक नहीं लिखते हैं। इसका उपसंहार करते हुए मूल में कहा गया है 'अत' इति, अतः वाक्य तात्पर्य के विरोध का परिहार करने के लिए सब पदों की लक्षणा भी (कोई) दोष नहीं है। अतएव 'असन्न' इत्यादि निर्विशेष ब्रह्मानुकूल अर्थजात का प्रतिपादन करने वाले वेदान्त (वाक्य) ही प्रमाण हैं। सगुण ब्रह्म के प्रतिपादन से वेदान्तों का अर्थात् वेदान्त वाक्यों का प्रामाण्य नहीं होगा, सविशेष के मिथ्या होने से—इन वाक्यों के मिथ्यार्थ प्रतिपादकत्व की आपत्ति होगी—घट की तरह और शुक्ति रजत की तरह। अपच्छेद न्याय से शास्त्र का प्रबल होना कहा जा चुका है—इसे मूल में कहते हैं—प्रत्यक्षेति। बलाबल के विचार की अपेक्षा ही नहीं है, क्योंकि शास्त्र और प्रत्यक्ष में परस्पर विरोध का अभाव है, जैसे शास्त्र द्वारा 'सन्मात्र' का प्रतिपादन किया जाता है वैसे ही प्रत्यक्ष द्वारा भी सन्मात्र ही गृहीत होता है—इस प्रकार विरोध के विपरीत इन दोनों में सौहार्द ही है—इस (बात) को मूल में कहते है—सतीति।

कहो कि प्रत्यक्ष तो घट पट आदि अनेक पदार्थों का ग्रहण कराने वाला देखा जाता है, न कि वह सन्मात्र का ग्राहक है, एक ही घट (आदि) में जाति रूप आदि के भेद से नाना आकारत्व हैं

त्युच्यते ? विलक्षणग्रहणाभावे सति सर्वेषां ज्ञानानामेकविषयत्वेन धारावाहिकविज्ञानवदेकव्यवहारहेतुतैव स्यात् ?, सत्यम्—तथैवात्र विविच्यते। कथम् ? 'घटोस्ति' इत्यत्रास्तित्वं तद्भेदश्च व्यवह्रियते, न च द्वयोरपि व्यवहारयोः प्रत्यक्षमूलत्वं संभवति—तयोर्भिन्नकालज्ञानफलत्वात्। प्रत्यक्षज्ञानस्य चैकक्षणवर्तित्वात् तत्र स्वरूपं भेदो वा प्रत्यक्षस्य

रूपादिभेदेन नानाकारत्वमस्ति तत्कथं प्रत्यक्षं सन्मात्रग्राहकमित्युच्यते ? प्रत्यक्षमात्रस्य सन्मात्रग्राहकत्वे च भिन्नभिन्नविषयाणां ग्रहणाभावेनैकविषयत्वं स्यात्तेन धारावाधिकज्ञानवदेकपदार्थव्यवहारहेतुत्वमेव स्यान्नानेकपदार्थ व्यवहारहेतुत्वमिति न घटपटाद्यनेकपदार्थेषु प्रवृत्तिः स्याद् न चैवमस्तीत्याशङ्कते—नन्विति, 'घटोयं घटोयम्' इत्यादिरूपं यन्निरन्तरमेकपदार्थविषयकं ज्ञानं तद् धारावाहिकज्ञानमित्युच्यते, प्रत्यक्षस्य सन्मात्रग्राहित्वे तत्तुल्यत्वं स्यात् त्वन्मतेन सन्मात्रातिरिक्तस्य ग्रहणासम्भवादित्यर्थः। अद्वैती उत्तरमाह—सत्यमिति, यदुक्तं तत् सत्यम्। तथा=प्रत्यक्षस्य सन्मात्रग्राहित्वमस्ति नवेति, किं वा प्रत्यक्षस्य सन्मात्रग्राहित्वमेव विविच्यते=विविच्य प्रतिपाद्यते। तादृशविवेकं पृच्छति—कथमिति। अद्वैती स्वाभिप्राय्यं विशदयति—घटोस्तीति, 'घटोस्ति' इत्यत्र द्वैतवादिना अस्तित्वस्य=सत्त्वस्य घटस्वरूपस्य तद्भेदस्य=अस्तित्वभेदस्य किं स घटविशिष्टपटादिभेदस्य च व्यवहारो वक्तव्य; न चैवं सम्भवति—द्वयोः=अस्तित्वतद्भेदव्यवहारयोः प्रत्यक्षमूल-

---

तब फिर कैसे प्रत्यक्ष को सन्मात्र ग्राहक कहते हो, प्रत्यक्ष मात्र के सन्मात्र ग्राहकत्व में भिन्न-भिन्न विषयों के ग्रहण का अभाव होने से एक विषयता नहीं होगी, इससे धारावाहिक ज्ञान की तरह एक पदार्थ व्यवहार हेतुता ही होगी, अनेक पदार्थ व्यवहार हेतुता नहीं होगी। अतः घट पट आदि विविध पदार्थों में प्रवृत्ति भी नहीं होगी और ऐसा है नहीं यह आशङ्का मूल में करते हैं—नन्विति, यह घट है, यह घट है, इत्यादि रूप जो निरन्तर एक पदार्थ विषयक ज्ञान होता है वह धारावाहिक ज्ञान कहा जाता है। प्रत्यक्ष के सन्मात्र ग्राही होने पर तत् तुल्यता होगी—तुम्हारे मत से—सन्मात्र से अतिरिक्त का ग्रहण असम्भव होगा—इत्यर्थः। अद्वैती उत्तर देता है—सत्यमिति, जो कहा वह सत्य है। तथा=प्रत्यक्ष का सन्मात्र ग्राहकत्व है या नहीं, अथवा प्रत्यक्ष के सन्मात्रग्राहित्व का ही विवेक करके प्रतिपादन किया जाता है। तादृश विवेक को पूछता है—कथमिति, अद्वैती अपने अभिप्राय को स्पष्ट करता है—'घटोऽस्ति-२' घट है—घट है यहाँ द्वैतवादी के द्वारा घटत्व रूप सत्व का और उसके अस्तित्व भेद तथा घटनिष्ठ पटादि भेद का व्यवहार कहा जाना चाहिए, पर ऐसा सम्भव नहीं है—क्योंकि अस्तित्व व्यवहार तथा तद्भेद व्यवहार दोनों की प्रत्यक्षमूलता असम्भव है। उक्त में हेतु कहते हैं—तयोरिति, तयोः=तद् अस्तित्व और तद्भेद दोनों व्यवहारों का भिन्न कालिक ज्ञान फल होने से भेदज्ञान द्वारा भेद व्यवहार और अस्तित्व ज्ञान द्वारा अस्तित्व व्यवहार होता है। एक ज्ञान से व्यवहार द्वय का संभव नहीं होता। इत्यर्थः। उभय व्यवहार का एक प्रत्यक्ष

विषय इति विवेचनीयम्, भेदग्रहणस्य स्वरूपग्रहणतत्प्रतियोगिस्मरणसव्यपेक्षत्वादेव स्वरूप-विषयत्वमवश्याश्रयणीयमिति न भेदः प्रत्यक्षेण गृह्यते,अतो भ्रान्तिमूल एव भेदव्यवहारः।

किं च भेदो नाम कश्चित् पदार्थो न्यायविद्भिर्निरूपयितुं न शक्यते। भेदस्ता-

---

त्वाऽसंभवात्, उक्ते हेतुमाह—तयोरिति, तयोः=अस्तित्वतद्भेदव्यवहारयोर्भिन्नकालिकज्ञानफलत्वात् भेदज्ञानेन भेदव्यवहारोऽस्तित्वज्ञानेन चास्तित्वव्यवहारः संभवति न त्वेकज्ञानेनैव व्यवहारद्वयमित्यर्थः। ननूभयव्यवहारस्याप्येकप्रत्यक्षविषयत्वं किं न स्यादित्याशङ्क्याह—प्रत्यक्षज्ञानस्येति, एकक्षणवर्तिप्रत्यक्षस्य स्वरूपभेदयोर्मध्ये एक एव विषयः संभवति—एकक्षणे द्वयोर्ग्रहणासंभवात्. तत्रापि स्वरूपभेदयोर्मध्ये प्रत्यक्षस्य स्वरूपं वा भेदो वा विषय इति विवेचनीयम्। भेदस्य तु प्रत्यक्षविषयत्वं न संभवतीति विवेचयति—भेदग्रहणस्येति, भेदज्ञानं हि स्वरूपग्रहणेन भेदप्रतियोगिस्मरणेन च जायते न च 'घटोस्ति' इतिज्ञानकाले प्रतियोगिस्मरणमस्ति स्वरूपग्रहणं त्वस्त्येवेति प्रत्यक्षस्य स्वरूपमात्र-विषयकत्वमेव स्वीकार्यं स्वरूपं चास्तित्वमेव तदेव च सदित्युच्यते इति प्रत्यक्षस्य सन्मात्रग्राहित्वं सिद्धम्, भेदव्यवहारस्तु भ्रान्तिमूलक एव यथा शुक्तिरजतस्थले स्वरूपभूतेदन्त्वस्य प्रत्यक्षविषयत्वं रजतस्य भ्रान्तिविषयत्वमिति रजतव्यवहारो भ्रान्तिमूलकस्तथा।

'भेदोयं भिन्नधर्मिप्रतिभटविषयज्ञानजज्ञानवेद्यः' इत्याद्यभिप्रायेणाह—किं चेति। भेदनिरूपणा-शक्यत्वमुपपादयति—भेद-इति, यदि भेदो वस्तुनः स्वरूपं स्यात्तया स्वरूपे गृहीते स्वरूपत्वाविशेषाद्

विषयत्व क्यों नहीं होता ऐसी शङ्का करके कहते हैं—प्रत्यक्षज्ञानस्येति, एक क्षण में होने वाले प्रत्यक्ष के स्वरूप और भेद दोनों के मध्य में एक ही विषय का ग्रहण सम्भव होता है—क्योंकि एक क्षण में दो विषयों का ग्रहण असम्भव है, वहाँ भी स्वरूप और भेद दोनों के बीच में प्रत्यक्ष का विषय स्वरूप होता है अथवा भेद होता है यह विवेचनीय है। भेद का प्रत्यक्ष विषयत्व संभव नहीं है इसका विवेचन करते हैं—भेदग्रहणस्येति। भेद का ज्ञान, स्वरूप ग्रहण द्वारा, भेद के प्रतियोगी के स्मरण से होता है। 'घटोऽस्ति'=घड़ा है—इस ज्ञान काल में प्रतियोगी का स्मरण नहीं है, स्वरूपग्रहण तो है ही—इसलिए प्रत्यक्ष का स्वरूप मात्र विषयकत्व स्वीकार्य है और स्वरूप अस्तित्व (ही) है—वही सत् कहा जाता है—इस प्रकार प्रत्यक्ष का सन्मात्र ग्राहित्व सिद्ध होता है, भेदव्यवहार तो भ्रान्ति-मूलक ही है, जैसे 'शुक्तिरजत' स्थल में—स्वरूप भूत 'इदन्त्व (यह है)' का प्रत्यक्ष होता है और रजत का (उसमें) भ्रम होता है—इस प्रकार शुक्ति में रजत का व्यवहार भ्रममूलक सिद्ध है, वैसे ही—यह भेद, भिन्न धर्मी विरुद्ध विषयक ज्ञान से उत्पन्न होने वाले ज्ञान द्वारा वेद्य अर्थात् जानने योग्य होता है, इत्यादि अभिप्राय से कहते हैं—किञ्चेति। भेद के निरूपण की अशक्यता का उपपादन करते हैं—भेद इति, यदि भेद वस्तु का स्वरूप हो तब स्वरूप के गृहीत होने पर स्वरूप के भेद रूप होने से भेद

वन्न वस्तुनः स्वरूपम्—वस्तुस्वरूपे गृहीते स्वरूपव्यवहारवत् सर्वस्माद् भेदव्यवहारप्रसक्तेः। न च वाच्यम्-स्वरूपे गृहीतेपि भिन्न इति—व्यवहारस्य प्रतियोगिस्मरणसव्यपेक्षत्वात् तत्स्मरणाभावेन तदानीमेव न भेदव्यवहार इति, स्वरूपमात्रभेदवादिनो हि प्रतियोगिसव्यपेक्षा च नोत्प्रेक्षितुं क्षमा, स्वरूपभेदयोः स्वरूपत्वाऽविशेषात्, यथा स्वरूपव्यवहारो

भेदोपि गृहीत एवेति वक्तव्यं तथा च यथा स्वरूपग्रहणात् 'घटोस्ति' इति स्वरूपव्यवहारो भवति तथा भेदस्यापि गृहीतत्वादेव 'भिन्नोयम्' इति भेदव्यवहारोपि स्यादेव न चैवं भवतीति न भेदः स्वरूपमिति सिद्धम्। ननु भिन्न इति भेदव्यवहारे भेदप्रतियोगिस्मरणस्यापेक्षास्तीति स्वरूपमात्रे गृहीतेपि तत्स्मरणाभावेन='भेदप्रतियोगिस्मरणाभावेन तदानीमेव=स्वरूपग्रहणकाले एव भेदव्यवहारो न भवति भेदप्रतियोगिस्मरणे जाते च भेदव्यवहारो भवत्येवेति न भेदस्य स्वरूपत्वे दोषः यथा धूमस्वरूपे गृहीतेपि व्याप्तिस्मरणं विनाऽनुमितिर्नजायते तथेत्याशङ्क्याह=न चेति। इति न च वाच्यमित्यन्वयः। परिहारहेतुमाह—स्वरूपमात्रेति, यदि स्वरूपमात्रमेव भेदस्तदा स्वरूपव्यवहारे इव भेदव्यवहारेपि प्रतियोगिसव्यपेक्षा=प्रतियोगिस्मरणापेक्षा वक्तुं न शक्यते अन्यथा स्वरूपव्यवहारेपि प्रतियोगिस्मरणापेक्षा स्यादेव द्वयोरपि स्वरूपत्वाविशेषात् स्वरूपव्यवहारश्च न प्रतियोगिस्मरणसापेक्ष, इति भेदव्यवहारोपि न प्रतियोगिस्मरणसापेक्षः संभवति, न च स्वरूपग्रहणकाले भेदव्यवहारो भवतीति न वस्तुतः स्वरूपं भेद इति सिद्धम्। किं च यदि भेदः स्वरूपं स्यात्तदा स्वरूपविशिष्टबोधकस्य

भी गृहीत होगा, यह कहना चाहिए तथा जैसे स्वरूप का ग्रहण होने से 'घटोऽस्ति' यह स्वरूप व्यवहार होता है वैसे हो भेद के भी गृहीत होने से 'भिन्नोऽयम्' यह भेद व्यवहार भी होगा, परन्तु ऐसा होता नहीं है अतः भेद वस्तु का स्वरूप नहीं है यह सिद्ध हुआ। कहो कि 'भिन्नः' इस भेद व्यवहार में भेद के प्रतियोगी स्मरण की अपेक्षा है, स्वरूप मात्र के गृहीत होने पर भी भेद के प्रतियोगी स्मरण का अभाव होने से स्वरूप ग्रहण के काल में ही भेद व्यवहार नहीं होता, भेद के प्रतियोगी स्मरण के होने पर तो भेद का व्यवहार होता ही है, अतः भेद के वस्तु स्वरूपत्व में कोई दोष नहीं है जैसे धूप के स्वरूप का ग्रह होने पर भी व्याप्ति के स्मरण के बिना अनुमिति नहीं होती। वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिए) ऐसी आशङ्का करके मूल में कहते हैं न चेति—इसका अन्वय वाच्यम् के साथ है। परिहार का हेतु बतलाते हैं—स्वरूपमात्रेति। यदि स्वरूप मात्र ही भेद है तब स्वरूप व्यवहार की तरह भेद व्यवहार में भी प्रतियोगी के स्मरण की अपेक्षा नहीं कही जा सकती; अन्यथा स्वरूप व्यवहार में भी प्रतियोगी स्मरण की अपेक्षा होगी ही—दोनों के स्वरूप में कोई भेद न होने से। स्वरूप व्यवहार ही प्रतियोगी स्मरण सापेक्ष नहीं होता, भेद व्यवहार भी प्रतियोगी स्मरण सापेक्ष संभव नहीं है। स्वरूप ग्रहण के समय में भेद व्यवहार नहीं होता है अतः वस्तु का स्वरूप भेद नहीं यह सिद्ध हुआ। किं च (=और भी—) यदि भेद वस्तु का स्वरूप हो तब स्वरूप विशिष्ट के बोधक घट

न प्रतियोग्यपेक्षः भेदव्यवहारोपि तथैव स्यात्। 'हस्तः कर' इतिवत् 'घटो भिन्न' इति पर्यायत्वं च स्यात्।

नापि धर्मः—धर्मत्वे सति तस्य स्वरूपाद् भेदोऽवश्याश्रयणीयः अन्यथा स्वरूपमेव स्यात्, भेदे च तस्यापि भेदस्तद्धर्मस्तस्यापीत्यनवस्था। किं च जात्यादिधर्मविशिष्टवस्तु-

---

घटपदस्यभेदविशिष्ट बोधकस्य भिन्नपदस्य च पर्यायत्वं स्याद् भेदस्यापि स्वरूपत्वात् न चैवमस्तीति न भेदः स्वरूपं संभवतीत्याह—हस्त इति। भेदस्य स्वरूपत्वपक्षे भिन्नशब्दोपि घटादिशब्दवत् स्वरूपभूत-भेदस्यैव बोधकः स्यादिति विभाव्यम्।

भेदस्य धर्मत्वं निराकरोत्यद्वैती जीचीमि, यदि भेदो वस्तुनो धर्मस्तदा तस्य=धर्मभूतस्य भेदस्य वस्तुस्वरूपाद् भेदोऽवश्यं वक्तव्यः अन्यथा=स्वरूपभेदयोर्भेदाभावे भेदः स्वरूपमेव स्यात् न च स्वरूपत्वं भेदस्य संभवतीति प्रतिपादितमेव। भेदे=स्वरूपभेदयोर्भेदे च यथा घटपदयोर्भेदं विना भेदो न सिध्यति तथा स्वरूपभेदयोरपि भेदं विना भेदो न सिध्यतीति तस्य=धर्मतया स्वीकृतस्य भेदस्यापि भेदः=स्वरूपभेदभेदस्तद्धर्मः=धर्मभूतभेदस्य धर्मःस्यात् तस्यापि=पुनश्च धर्मभूतभेद-निष्ठो यो भेदः=स्वरूपभेदभेदस्तस्य तदाश्रयभूतधर्मलक्षणभेदादपि भेदो वक्तव्य इत्येवमुत्तरोत्तर प्रधावनेनाऽनवस्थैव स्यात्, उत्तरोत्तरभेदानङ्गीकारे च मूलभेदस्य स्वरूपत्वमेव प्रसज्येतेत्यर्थः। भेदस्य धर्मत्वेऽन्योन्याश्रयदोषमाह—किं चेति धर्मिग्रहणं विना तद्धर्मग्रहणं न संभवतीति धर्मिभूतस्य

पद की और भेद विशिष्ट बोधक भिन्न पद की पर्यायता होगी—भेद के भी स्वरूपभूत होनेसे। ऐसा पर है नहीं अतः भेद, वस्तु का स्वरूप, सम्भव नहीं है—यह कहते हैं—'हस्त' इति। भेद के स्वरूपत्व पक्ष में 'भिन्न' शब्द भी 'घट' आदि शब्द की तरह स्वरूपभूत भेद का ही बोधक होगा ऐसा समझना चाहिए।

अद्वैती भेद के धर्मत्व का निराकरण करता है—नापीति यदि भेद वस्तु का धर्म हो तब उस धर्मभूत भेद के वस्तु स्वरूप होने से भेद अवश्य करना चाहिए अन्यथा=वस्तु के स्वरूप और भेद दोनों के एक ही होने पर भेद स्वरूप ही होगा, और भेद का स्वरूपत्व सम्भव नहीं है—इसका प्रतिपादन किया जा चुका है। भेदे=स्वरूप और भेद दोनों का भेद होने पर, जैसे घट और पट दोनों के भेद के बिना, भेद सिद्ध नहीं होता उसी प्रकार वस्तु के स्वरूप और भेद के भेद बिना भेद की सिद्धि नहीं होती। तस्य=धर्मरूप में स्वीकृत भेद का भी भेद=स्वरूप भेद का भेद तद्धर्म अर्थात् धर्मभूत भेद का धर्म होगा। फिर धर्मभूत भेद निष्ठ जो भेद (=स्वरूप भेद भेद) उसका तदाश्रयभूत धर्मरूप भेद से भी भेद कहना होगा—इस प्रकार उत्तरोत्तर आगे बढ़ने से अनवस्था ही होगी। उत्तरोत्तर भेद के अस्वीकार करने पर मूल भेद की वस्तु स्वरूपता ही प्राप्त होगी। इत्यर्थः। भेद के वस्तुधर्म होने में अन्योन्याश्रय दोष कहते हैं—किञ्चेति, धर्मी के ग्रहण विना उसके धर्म का

ग्रहणे सति भेदग्रहणं भेदग्रहणे सति जात्यादि धर्मविशिष्टवस्तुग्रहणमित्यन्योन्याश्रयणम्, अतो भेदस्यापि दुर्विरूपत्वात् सन्मात्रस्यैव प्रकाशकं प्रत्यक्षम् ।

किं च घटोस्ति पटोस्ति घटोनुभूयते पटोनुभूयते इति सर्वे पदार्थाः सत्तानुभूति घटिता एव दृश्यन्ते अत्र सन्मात्रं सर्वासु प्रतिपत्तिष्वनुवर्तमानं दृश्यते इति तदेव परमार्थः, विशेषास्तु व्यावर्तमानतयाऽपरमार्थाः रज्जुसर्पादिवत्=यथा रज्जुरधिष्ठानतयाऽनुवर्तमाना सती परमार्था व्यावर्तमानाः सर्पभूदलनाम्बुधारादयोऽपरमार्थाः ।

जात्यादिधर्मविशिष्टस्य वस्तुनो ग्रहणे जाते एव तद्धर्मभूतस्य भेदस्य ग्रहणं स्यात् विशिष्टबुद्धौ विशेषणज्ञानं कारणमस्तीति भेदविशिष्टवस्तुग्रहणं भेदग्रहणे जाते एव स्यादिति परस्पराश्रयो दोषः । उपसंहरति—अत इति, भेदस्य दुर्निरूपत्वात्=निरूपयितुमशक्यत्वादपि प्रत्यक्षं सन्मात्रस्य ग्राहकमिति सिद्धम् । दुर्विरूपपदार्थस्य स्वीकारासंभवादित्यन्वयः ।

प्रत्यक्षस्य सन्मात्रग्राहकत्वे उपपत्त्यन्तरमाह—किं चेति, 'घटोस्ति' इत्यादौ सत्तघटिताः 'घटोऽनुभूयते' इत्यादौ चाऽनुभूतिघटिताः पदार्थाः प्रतीयन्ते, तथा च 'अस्ति' इत्यस्य सर्वत्र व्यपदेशात् अस्तिशब्दबोध्यं सन्मात्रं सर्वप्रतीतिष्वनुवर्तमानमस्तीति तदेव परमार्थः=सत्यमस्ति घटपटादिविशेषास्तु व्यावर्तमानतया=घटज्ञाने पटो नास्ति पटज्ञाने घटो नास्तीति व्यावृत्त्या अपरमार्थाः=मिथ्याभूता रज्जुसर्पादिवदित्यन्वयः । उक्तमुदाहरणमुपपादयति यथेति, भ्रान्त्या प्रतीयमानसर्पादीनामधि-

---

ग्रहण संभव नहीं होता है। धर्मिभूत जात्यादि धर्मयुक्त वस्तु का ग्रहण होने पर ही उसके धर्म भूत भेद का ग्रहण होगा। विशिष्ट बुद्धि में विशेषण का ज्ञान कारण होता है, भेद विशिष्ट वस्तु का ग्रहण, भेद के ग्रहण होने पर ही होगा यह 'परस्पर अपेक्षारूप' अन्योन्याश्रय दोष होगा। उपसंहार करते हैं—अत इति, भेद के दुर्निरूप होने से भी प्रत्यक्ष सन्मात्र का ग्राहक होता है—यह सिद्ध हुआ, क्योंकि—दुर्निरूप पदार्थ का स्वीकार (किया जाना) असंभव होता है। इत्यन्वयः।

प्रत्यक्ष के सन्मात्र ग्राहक होने में दूसरी उपपत्ति (युक्ति) कहते हैं—किञ्चेति, 'घटोऽस्ति' इत्यादि में सत्ता घटित एवं 'घटोऽनुभूयते' इत्यादि में अनुभूति घटित पदार्थ प्रतीत होते हैं तथा 'अस्ति' का सर्वत्र कथन होने से 'अस्ति' शब्द बोध्य सन्मात्र, सभी प्रतीतियों में अनुवर्तमान रहता है, अतः वही परमार्थ अर्थात् सत्य है। घट पट आदि विशेष व्यावर्तमान अर्थात् घट के ज्ञान में पट और पट के ज्ञान में घट के न रहने से अपरमार्थ (=मिथ्या) हैं, जैसे रज्जु में सर्प मिथ्या होता है। इत्यन्वय। उक्त उदाहरण का उपपादन करते हैं—यथेति—भ्रान्ति से प्रतीत होने वाले सर्प आदि का अधिष्ठान (आधार) रज्जु ही है, क्योंकि रज्जु के अज्ञान से रज्जु में तादृश (=अवास्तविक

श्री जी. डी. सोमानी की पुण्यतिथि

बम्बई, परमभागवत श्रीगजाधर सोमानी से कौन ऐसा श्रीवैष्णव सन्त महान्त, विद्वान्, समाज सेवी या राजनयिक, व्यापारी होगा जो उन्हें न जानता हो 'समय बींतने में देर नहीं होती'। देखते देखते यह १९ वीं पुण्यतिथि भी आ गयी। वे दि० ८ जनवरी सन् १९७३ को प्रातः ११ बजे हृदयगति अवरोध से परमधाम पधार गये थे।

इस धर्मरत्न दीप्तनक्षत्र का उदय मौलासर जि० नागौर राजस्थानमें पुण्यश्लोक पूतात्मा श्रीमान् सेठ हजारीमल सोमानी के ज्येष्ठपुत्र रूप में दि० १२ अप्रैल १९०७ को हुआ। अनेक शुभ लक्षणों के समुदाय इस नर श्रेष्ठ ने अपने जीवन में दिनन्दिनी समुन्नति को स्वय ही अनुभव नहीं किया—अपने परिवार को भी विशेष श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया बल्कि जिस व्यष्टि समष्टि के संपर्क में आया उसे भी समुन्नत बनानेमें अपनी समस्त शक्ति समर्पित की। ऐसे भगवदीय जन बिरले ही होते हैं। श्रीगजाधर सोमानी ऐसा ही सहृदय व्यक्ति था।

'अनन्तसन्देश' परिवार ऐसे श्रीवैष्णवाग्रेसर की १९ वीं पुण्यतिथि पर साभार श्रद्धा सुमन अर्पित करता है और उनके परिवार की मंगलकामना मनाता है।

❖

समाजसेवी श्रीफूलकिशन जाजू का परमपद

समाजसेवी, जवाहरात के व्यवसायी श्रीरामकिशनजाजू (जयपुर) के पिताश्री श्रीवैष्वाग्रेसर श्रीफूलकिशनजाजाजू का ता०१९-११ ९० को जयपुरमें परमपद हो गया, उनकी आयु ८४ वर्ष की थी, वे माहेश्वरी समाज,जयपुर के संस्थापकों में से थे, वे कई वर्षों तक समाज के भण्डार मन्त्री भी रहे।

आप धार्मिक विचार वाले, दयालु प्रकृति के थे, आप अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड़ गये हैं। प्रभु पुण्यात्मा को शान्ति प्रदान करें।

— गोपाल मालपाणी, जयपुर

शोक समवेदना

वृन्दावन, लक्ष्मीकुञ्ज रङ्गजी का नगला स्थित श्रीवैष्णव एवं स्वतन्त्रतासंग्राम सेनानी समाजसेवी श्रीसच्चिदानन्दश्रीवास्तव का वैकुण्ठवास दि० ३०-१२-९०को७२ वर्षकी आयु मेंहो गया।

आपका और्ध्वदैहिक कार्य उनके पुत्र, विनोदकुमार, वृजेशकुमार श्रीवास्तव ने सविधि सम्पन्न किया। हमारी समवेदना उनके साथ है।

—सम्पादक

श्रीस्वामी वंशीधराचार्य का परमपद

पंचवटी नासिक स्थिति श्रीबालाजी मन्दिर के महान्त श्रीस्वामी वंशीधराचार्यजी महाराज का वैकुण्ठवास वैकुण्ठ एकादशी को हो गया। आप श्रीमान् स्वामी वासुदेवाचार्य त्रिजेटपालीके प्रधान शिष्यों में से थे। आपने श्रीवैष्णवता का प्रचार अनेक प्रकार से किया। पचासों अन्नक्षेत्र भी आप चलाते थे। 'अनन्तसन्देश' आप महात्मा के परमपद पर प्रभु से प्रार्थना है कि आपको भगवत्सान्निध्य प्राप्त हो।

—प्रहलाददास श्रीवैष्णव, सरौती

Reg. No. M. T. R. 200

श्रीवेदान्तदेशिक आश्रम, वृन्दावन में वार्षिकोत्सव

वृन्दावन, केशीघाट स्थित श्रीवेदान्तदेशिक आश्रम में भगवान श्रीजानकी वल्लभलाल अर्चाविग्रहका वार्षिक महोत्सव दि० २१ जनवरी १९९१ को ज० गु० रा० परमहंस श्रीस्वामी भगवान दासाचार्य महाराज के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। श्रीस्वामीजी ने श्रीपंचमी को ही भगवान् की प्रतिष्ठा की थी। आप इस पर्व पर एक विद्वत्-सभा का आयोजन करते हैं, जिसमें आहूत विद्वान् संस्कृत में श्रीरामभद्र के गुणगान कर मंगलाशासन मनाते हैं।

इस वर्ष भी यह परिषद् श्री ज.गु.रा. श्रीदेवनारायणाचार्य त्रिदण्डिजीयर स्वामीजी महाराज (श्रीहरिदेव मन्दिर) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। जिसमें सर्वश्री हितदासजी महाराज, श्रीरामानुजाचार्यजी, श्रीसदाशिवजी, श्रीमुरारिलाल चतुर्वेदी, डा. शैलेशनाथजी. डा. श्रीदिवाकरजी, श्रीमधुसूदनाचार्यजी, श्रीकृष्णमाचार्यजी, श्रीकाशीनाथजी, श्रीराजारामजी, श्रीरामचरणजी आदि विद्वानों के प्रवचन हुये। सभासंचालन पं.श्रीकेशवदेव शास्त्री ने किया। अन्तमें श्रीवेदान्तदेशिक पीठाधिपति ने अपने प्रवचनके साथ आभार प्रदर्शन किया। समस्त विद्वानों की संभावना के उपरान्त सभा विसर्जित की गई। दि० २२-१-९१ को आश्रम में वृहद्भण्डारा का आयोजन सम्पन्न हुआ। ★

श्रीरङ्गलक्ष्मी आ० सं० वि० में संस्कृत सम्मेलन

वृन्दावन में दि० ९एवं १० जनवरी ९१ को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ के सहयोग से दो दिवसीय आगरा मण्डलीय संस्कृत सम्मेलन निर्धारित कार्यक्रमानुसार सम्पन्न हुआ। आयोजन की अध्यक्षता श्रीमान् पं० राजवन्शी द्विवेदीजी ने की एवं मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमान् पं० रामानुजाचार्यजी महाराज पधारे।

मंगलाचरण के पश्चयात उपस्थित अतिथियों का स्वागत भाषण पं० श्रीप्राणगोपालाचार्य ने पढ़ा एवं सांयकालीन सभा में वादविवाद प्रतियोगिता और समस्या पूर्ति कार्यक्रम विद्यार्थीयों द्वारा सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन प्रातः व्याकरण, साहित्य, न्याय, वेदान्त के छात्रों द्वारा शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ। सायंकाल आगन्तुक विद्वानों द्वारा भाषण और प्राचार्य श्रीमुरारिलाल चतुर्वेदी जी द्वारा संस्कृत रचना पाठ के,पश्चयात विजयी छात्रों को पुरुषकार वितरण किया गया। अध्यक्षीय भाषण के साथ आयोजन सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में श्रीमधुकर द्विवेदी निदेशक उ० प्र० सं० अकादमी लखनऊ की उपस्थिति एवं उनके निर्देश संकेत सराहनीय थे, आयोजन का सफल संचालन डा. गिरीजाशास्त्री जी द्वारा किया गया। समारोह को पूर्णरूप देने में श्रीचक्रपाणी मिश्र प्राचार्य आदिका सक्रिय परिश्रम था।

—सम्पादक

—पत्र व्यवहार के पते—

व्यवस्थापक—
श्रीवेङ्कटेश देवस्थान
८०,८४ फणसवाड़ी, बम्बई —२

सम्पादक—
श्रीरङ्गनाथ प्रेस
वृन्दावन—२८११२१ (मथुरा) उ० प्र०

इस पत्र के व्यवस्थापक एवं मालिक श्रीवेङ्कटेश देवस्थान ८०/८४ फणसवाड़ी, बम्बई—२ ने सम्पादक पं. श्रीकेशवदेव शास्त्री द्वारा श्रीरंगनाथ प्रेस, रंगजी पश्चिम कटरा, वृन्दावनसे छपवाकर प्रकाशित किया।